ॐ REGD. NO. L. 2077

भक्ति

वर्ष १] अङ्क १०]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

भगवद्भक्तिविमुखानां शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्म निरर्थकम् ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

आषाढ़ सम्वत् १९८४ ।

निम्न लिखित महानुभावों ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राव साहब श्री बल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलजारबाग, पटना १०१)

२. राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)

३. श्रीमान् भाय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)

४. राव शीराम रईस नांगल २५)

५. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)

६. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)

७. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)

८. बा० स्वरूपस्वरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स पटना यू० पी०। २५)

९. श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी ले० राव बहादुर बलवीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्युनिस्पल कमेटी पलवल। ११)

२. श्रीमती उमरावकौर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल ११)

३. महाशय शादीराम जी मसानी, रेवाड़ी। ५)

ॐ

"फलीतु केवला भक्तिः" ।

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादकः-

भक्ति

एक प्रति का ।)

स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका ।

वर्ष १ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आषाढ़ पूर्णिमा सं० १९८४ । { अङ्क १०

॥ मंगलाचरणम् ॥

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्र मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैःस्तवै ।
वेदै साङ्ग पदक्रमोपनिषदै र्गायन्ति यं सामगाः ॥
ध्यानावस्थित तद् गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो ।
यस्यां तन्नविदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र रुद्र, मरुत, जिसकी दिव्य स्तोत्रो से स्तुति करते हैं सामवेद गाने वाले, अंग, पद, क्रम, और उपनिषद्द सहित अर्थात् तीनों वेदों से जिसका गायन करते हैं योगीजन जिस परमेश्वर में ध्यान लगाये हुए जिसको देखते हैं और देव और दैत्य जिसका अन्त नहीं जानते हैं ऐसे परमेश्वर के लिये नमस्कार हो ॥ १० ॥

वामाङ्के च विभाति भूधर सुता देवापगा मस्तके ।
भाले वालविधु र्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोयं भूति विभूषण सुरवरः सर्वाधिपःसर्वदः ।
शर्व सर्वगतः शिव शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ॥२॥

जिन शिवजी महाराज के वामाङ्ग में पार्वती शोभित होती हैं, मस्तक में गंगाजी हैं, माथे पर दायज का चन्द्रमा है, गले में जिनके विष है, जिन शिवजी महाराज के हृदय पर सर्पराज पड़ा है, किनका विभूति ही गहना है, जो देवताओं में श्रेष्ठ, सबके स्वामी सर्वव्यापक चन्द्रमातुल्य शोभायमान् श्रीमंगलस्वरूप महादेव मेरी रक्षा करें ॥ २ ॥

हे रामः पुरुषोत्तम नरहरे नारायण केशव ।
गोविन्द गरुड़ध्वज गुणनिधे दामोदर माधव ॥
हे कृष्ण कमलापते यदुपते सीतापते श्रीपते ।
हे वैकुण्ठपते चराचरपते लक्ष्मीपते पाहि माम् ॥ ६ ॥

हे राम ! हे पुरुषोत्तम ! हे नर हरे ! हे नारायण ! हे केशव ! हे गोविन्द हे गरुड़ध्वज ! हे गुणनिधे ! हे दामोदर ! हे माधव ! हे कृष्ण ! हे कमलापते ! हेयदुपते हे श्रीपते ! तथा हे लक्ष्मी पते ! मेरी रक्षा करो ॥ ६ ॥

कण्ठे यस्य विराजतेहि गरलं गंगाजलं मस्तके ।
वामाङ्गे गिरि राज राज तनया जाया भवानी सती ॥
नन्दी स्कन्द गणाधिराज सहित श्री विश्वनाथः प्रभो ॥
काशी मन्दिर संस्थितोऽखिल गुरो देवाय तस्मै नमः ॥ ३ ॥

जिसके कण्ठ में विष विराजमान है, और मस्तक में गंगा जल है, और वामे अङ्ग में गिरिराज पर्वत की राजकन्या सती पारवती जी स्थित हैं। नन्दी गण तथा स्वामी कार्तिकेय और गणेश आदि सहित काशी के मन्दिर में स्थित श्रीविश्वनाथ प्रभु जो अखि जगत के गुरु हैं ऐसे देव के लिये नमस्कार है ॥ ३ ॥

भक्तों के चरित्र २ ।

नामदेव जी ।

कहते हैं कि पाण्डर नामके ग्राम में वामदेव नाम का एक छीपी था । वह भगवान का भक्त और उपासक था । उस के एक लड़की थी जो बाल्य अवस्था में ही विधवा हो गई थी । जब वह १२ वर्ष की हुई तो वामदेव ने उसे भगवत् सेवा व पूजा का उपदेश करके विश्वास दिलाया कि यदि तू श्रद्धा और प्रेम से भगवान की पूजा करेगी तो तेरा सब मनोरथ सफल हो जावेगा, और भगवान तेरी सब मनोकामना पूर्ण कर देंगे । उस शुद्ध हृदया बालिका ने उसी दिन से ऐसे प्रेम व श्रद्धा, भक्ति से भगवान की पूजा की कि भगवान थोड़े ही काल में प्रसन्न हो गये । यहां तक कि युवा होने पर जब उस को काम की चाहना हुई तो भगवान ने वह भी पूरी की और उस लड़की को गर्भ रह गया । जब यह बात ज्ञात हुई तो उस के पिता ने बड़े क्रोध से पूछा कि कुल को कलंकित करने वाला यह दुष्कर्म तूने क्या किया है ? उस पवित्र लड़की ने उत्तर दिया कि आप ने कहा था कि तेरी जो इच्छा होगी वह सब भगवान पूर्ण करेंगे, सो जो कुछ हुआ, है वह भगवान् से हुआ है । वामदेव इस बात को सुन कर बहुत आनन्दित हुये और जब लड़का उत्पन्न हुआ तो अपनी समस्त सम्पत्ति को उसके उत्सव में लुटा दिया और उस बालक का नाम नामदेव रक्खा ।

नाम देवको जन्म से ही भगवान में प्रीति होगई । वह खेल में भगवान की मूर्ति बनाकर उसको वस्त्र, आभूषण पहना कर पूजा किया करता था । अभी बालक अवस्था थी कि अपने नाना से नित्य कहा करता कि यह मूर्ति मुझे देदो, मैं इसकी सेवा, पूजा किया करूंगा परन्तु उस का नाना बालक जानकर बहाना कर दिया करता । एक दिन वामदेव ने कहा कि मैं चार दिनके लिये गांव जाऊंगा उस समय तुझे ठाकुर सेवा दे जाऊंगा और यदि उस समय तूने प्रेम से सेवा की और भगवान ने तेरा भोग स्वीकार कर लिया तो सेवा तुझ को सौंप दूंगा । इस बात को सुन कर नाम देव जी बहुत प्रसन्न हुए और दिन गिनने लगे कि नाना कब जावेगा और नित्य प्रति अपने नाना से तकाजा करने लगे कि तुम कब जाओगे ? जब वह दिन आया तो उनका नाना भगवत सेवा की सब विधी उनको समझा

कर चला गया। नाम देव जी को बड़ा आनन्द हुआ वह दिन भर उत्साह में रहे कि कब सन्ध्या होवे और कब मैं भगवान की सेवा में लगूं। जब सन्ध्या हुई तो जङ्गल में से जाकर गौ लाए और बड़े प्रेम से दूध गरम किया। फिर उस में सुगन्ध और मिश्री मिला कर बड़े प्रेम व उत्साह से कटोरा भर कर भगवत के आगे निवेदन किया और मन में डर कर कि मुझ से कोई अपराध न होगया हो बड़ी दीनता से हाथ जोड़ कर भगवान से प्रार्थना की कि महाराज दूध है मुझ दास की यह सेवा स्वीकार कीजिये। नाम देव जी सच्चे, श्रद्धालु भक्त थे, वह समझते थे कि जैसे सब बालक दूध पीया करते हैं वैसे ही भगवान भी दूध पीते हैं परन्तु जब भगवान ने दूध नहीं पिया तो बहुत उदास हुये और चिन्ता में डूब गये जब बिलकुल निराश होगए तो रोने लगे और कहा कि महाराज अच्छे प्रकार गरम किया है, खूब मिश्री डाली है इत्यादि परन्तु फिर भी भगवान ने दूध नहीं पीया तो नामदेवजी रोते २ बिना भोजन किए भूखे प्यासे पड़े रहे, इस तरह दो दिन बीत गए। तीसरे दिन उनका नाना आने वाला था इसलिए उनको बड़ी व्याकुलता हुई वह विचार करने लगे कि अब भी ठाकुर जी ने दूध नहीं पीया तो मुझको सेवा नहीं मिलेगी। इसलिए फिर दूध बनाकर सामने लेगए और विनय किया परन्तु जब बार २ विनय करने पर भी ठाकुर जीने दूध नहीं पीया तो छुरी निकाल कर अपना गला काटने पर तत्पर होगए जब भगवत् ने उनका ऐसा दृढ़ विश्वास और प्रेम देखा तो प्रगट होकर एक हाथ से उनका हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से दूध का कटोरा उठाकर पीने लगे। नामदेवजी के आनन्द की सीमा न रही और जब कटोरे में थोड़ा दूध शेष रह गया तो कटोरा हाथ से पकड़ कर बोले कि तुम नित्य भर भर कटोरा दूध पीते हो मैं तीन दिन का भूखा हूं मेरे लिए कुछ तो छोड़ो। भगवत् हंस पड़े और अपना महाप्रसाद नामदेव जी को दिया। स्कन्द पुराण का वचन है कि भगवत् न काष्ठ की मूर्ति में हैं और न पाषाण की न किसी अन्य स्थान में वह तो केवल विश्वास में रहते हैं।

दूसरे दिन जब नामदेव जी का नाना आया तो इस वृतान्त को सुनकर विस्मित व आनन्दित हुआ और नामदेव जी से कहने लगा कि हमको भी तो अपने भगवान का भोग दिखलाओ। नामदेव जी उसी प्रकार दूध का कटोरा लेकर गए भगवान ने पीने में कुछ बिलम्ब किया तो चाकू दिखलाकर बोले कि मेरे पास यह मौजूद है। भगवत् ने तुरन्त दुग्ध पान किया। कुछ दिन में इस बात की ख्याति बादशाह तक होगई। बादशाह ने नामदेव जी को बुलाकर कहा कि तुमको ईश्वर मिला है इसलिए हमको भी दिखलाओ अथवा अपनी कुछ सिद्धाई बतलाओ। नामदेव जी बोले कि हमारे में सिद्धाई होती तो छीपी की आजीविका क्यों करते? कोई साधु महात्मा

आजाता है तो थोड़ी बहुत सेवा बन जाती है इसी के प्रभाव सेआपने भी याद करलिया है। बादशाह ने कहा कि मैं यह छल कपट की बातें नहीं सुनता यह गौ मरी पड़ी है इसको जिलादे नहीं तो तुमको कतल करदिया जावेगा नामदेव जी ने एक विष्णु पद गाया और गौ जीवित होगई। बादशाह चरणों में गिरपड़ा और विनयकरने लगा कि द्रव्य या गांव परगना जो आज्ञा हो भेट की जावे नामदेव जी ने उत्तर दिया कि हमको किसी बात की आकांक्षा नहीं है केवल विदाई चाहते हैं।

चलते समय बादशाह ने एक सुनहरी पलंग नामदेव जी को भेट किया। नामदेव जी ने आगे चलकर इस पलंग को नदी में डाल दिया।

एक दिन नामदेव जी पाण्डरपुर के ठाकुर द्वारे में दर्शन को गए। वहां बड़ी भीड़ थी इस लिए विचार किया कि यदि जूती यहां छोड़ेंगे तो संकल्प, विकल्प रहेगा इससे जूती कमर में बान्धकर दर्शन करने गए। वहां कीर्तन करने वाले झांझ, खड़ताल बजारहे थे। यह भी प्रेम मे मग्न होकर नाचने लगे और झांझ की जगह जूती खोलकर बजाने लगे। इस बात से लोग बहुत अप्रसन्न हुए और इनको पीट कर मन्दिर से बाहर निकाल दिया। नामदेव जी को अपने अपमान का तो खयाल न हुआ परन्तु भगवत् दर्शन से वंचित रहने का बड़ा सन्ताप हुआ। भगवान को अपने भक्त के इस कष्ट से करुणा उत्पन्न हुई जिससे भगवान ने मन्दिर का द्वार फेर कर नामदेव जी की तरफ कर दिया। इस चरित्र को देखकर सब लोग चकित रहे, कहते हैं अबतक उस मन्दिर का द्वार दक्षिण मुंह है। एक दिन अचानक नामदेव जी के घर आग लग गई तो जो वस्तु घर से अलग थी वह भी आग में डालने लगे और विनय किया कि सब को स्वीकार कीजिए। भगवान् बहुत हंसे और कहा कि क्या अग्नि में भी मुझको जानता है? नामदेव जी ने उत्तर दिया कि यह घर आपका है, इसको और कौन स्पर्श कर सकता है? भगवान ने प्रसन्न होकर आप ऐसा सुन्दर छप्पर छा दिया कि लोग देखकर चकित रह गए।

नामदेव जी को एकादशी व्रत में बड़ी श्रद्धा थी। एक दिन एक अति दुर्बल ब्राह्मण ने आकर भोजन मांगा। नामदेव जी ने कहा कि आज एकादशी है इस से हम कुछ न देंगे। ब्राह्मण ने बहुत आग्रह किया कि मैं बहुत भूखा हूं मेरे प्राण निकल जावेंगे अन्य लोगों ने भी समझाया कि इस को भोजन दे देना चाहिये परन्तु वह अपने नियम पर अटल बने रहे! अन्त को ब्राह्मण ने भूख से प्राण त्याग दिये। सब लोगों ने नाम देवजी पर ब्रह्महत्या का दोषारोपण किया परन्तु उन्होंने कुछभी खयाल नहीं किया और चिता चिनवा कर उस में ब्राह्मण का शव रखकर आप भी उस के साथ जलने को बैठ गये। यह देख भगवान हंस पड़े और उन के विश्वास पर

बहुत प्रसन्न हुए। एक रात एकादशी का जागरण हो रहा था उस समय हरि भक्तों को जल की प्यास बहुत लगी। पास एक बावड़ी थी परन्तु उस में एक प्रेत रहता था जिस के भय से कोई भी जल लेने नहीं गया। नामदेव जी कलश लेकर आधी रातको वहां गये वह प्रेत बावड़ी में से निकल कर आया। नामदेव जी ने उसे भी भगवान ही समझा और प्रसन्न होकर यह भजन गाने लगे,

यह आये मेरे लम्बक नाथ।
धरती पांव स्वर्ग लौं माथो, योजन भर २ हाथ।

भगवत उसी भूत में प्रकट हुये और वह भूत भी नामदेव जी की कृपा से भगवद्धाम को पहुंच गया॥

क्या करें।

और लोग उन से पूछने लगे कि फिर हम क्या करें?

उन्होंने उत्तर दिया, जिस के पास दो कोट हैं वह एक कोट उसे देदे कि जिसके पास एक भी नहीं है और जिस के पास भोजन है वह भी ऐसा ही करे।

इस पृथिवी पर अपने लिये धन जमा मत करो क्योंकि कोई और कीड़े उसे नष्ट कर देते हैं अथवा चोर उसे चुरा ले जाते हैं।

किन्तु तुम अपने लिये स्वर्ग में धन जमा करो कि जहां न काई लगती है और न कीड़े खाते हैं और न चोर ही दरवाजा तोड़ कर उसे चुरा ले जा सकते हैं फिर जहाँ तुम्हारा धन होगा, वहीं तुम्हारा दिल भी रहेगा।

आंख शरीर का दीपक है, इस लिये यदि तुम्हारी आंख स्थिर है तो तुम्हारा सारा शरीर प्रकाश से पूर्ण होगा।

किन्तु यदि तुम्हारी आंख में बुराई है तो तुम्हारे शरीर भर में अन्धकार का साम्राज्य होगा और यदि तुम्हारी अन्तर ज्योति ही तिमिरावृत्त है तब तो फिर तुम्हारे अन्दर कितना गहरा अन्धकार होगा।

कोई भी दो मालिकों की नौकरी कर नहीं सकता क्योंकि या तो वह एक से घृणा करेगा और दूसरे से प्रेम, या वह एक की सेवा करेगा और दूसरे की अपेक्षा। तुम ईश्वर और माया दोनों के होकर नहीं रह सकते।

इस लिये मैं तुम से कहता हूं कि अपने जीवन में यह चिन्ता मत करो कि मैं क्या खाऊंगा और क्या पीऊंगा और न शरीर के लिये यह सोचो कि इसे क्या पहिनाऊंगा। क्या जीवन स्वयं ही भोजन से बढ़ कर और काया कपड़ों से अधिक मूल्यवान नहीं है।

बस तुम ईश्वर के राज्य और उस के धर्म मार्ग की ही खोज करो और बाकी यह सब चीजें तुम्हें स्वयं ही मिल जायंगी।

सुई के नकुए में से ऊंट का निकल जाना

तो सम्भव है किन्तु अमीर आदमी के लिए स्वर्ग में प्रवेश करना असम्भव है।

(म० टाल्टाय)

ध्यान।

ध्यान करने के लिए भिन्न २ मत पाए जाते हैं कोई कहता है कि भ्रूमध्य में ध्यान लगाना चाहिए, किसी का मत है कि बंक नाल में ध्यान लगाना ठीक है, कोई दसवें द्वार में और कोई हृदय में ध्यान लगाना उत्तम समझते हैं। इस में भिन्न २ मत होते हुए भी विशेषता हृदय ध्यान की ही वर्णन की गई है–

मनुष्य का शरीर पिण्ड अर्थात छोटा ब्रह्माण्ड है और ब्रह्माण्ड के सब पदार्थों के प्रति रूप इसमें हैं। शरीर के छः चक्र छः विशेष शक्ति और भाव के केन्द्र हैं और उन शक्ति और भाव की जाग्रति में उन केन्द्रों पर धारणा करना बहुत बड़ी सहायता देती है। शरीर में हृदय चक्र उपास्यदेव के निवास का स्थान है और यही प्रेम भाव का भी केन्द्र है, क्योंकि उपास्य देव प्रेम रूप हैं और प्रेम ही में उनका वास रहता है। यह हृदय ही कारण शरीर के अभिमानी "प्राज्ञ" जो यथार्थ जीवात्मा है उसके वास का स्थान इस शरीर में है और साधना का एक प्रधान उद्देश यह भी है कि उस प्राज्ञ की जाग्रति हो और "विश्व" व "तैजस" उसके प्रतिबिम्ब अपने बिम्ब "प्राज्ञ" के साथ एकता प्राप्त करें। साधारण लोगों में प्राज्ञ की अवस्था सुषुप्ति की है और इस सुषुप्ति का हृदय से सम्बन्ध है। ब्रह्मोपनिषद् में लिखा है–

नेत्रे जागरितं विद्यात् कण्ठे स्वप्नं समादिशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थंतु तुरीयं तद्विलक्षणम्॥

जाग्रत अवस्था में शरीराभिमानी का नेत्र में, स्वप्न के समय कण्ठ में, और सुषुप्ति काल में हृदय में वास रहता है किन्तु तुरीयावस्था में इससे विलक्षण स्थिति रहती है। अतएव यह परमावश्यक है कि श्री उपास्य देव का ध्यान हृदयही में किया जाय, अन्यत्र कहीं भी नहीं क्योंकि यही उनके वास और प्रेम का स्थान है। शरीर में हृदय ही गोलोक वैकुण्ठ, साकेत, वृन्दावन, चित्रकूट, कैलास आदि हैं जहां श्री उपास्यदेव, सदा सर्वदा वर्तमान रहकर विहार करते हैं और जिस स्थान को कदापि नहीं त्यागते। अतएव यह हृदय एक बड़ा रहस्य का स्थान है और साधक की श्री उपास्यदेव ही की कृपासे इस हृदय में स्थिति होती है अन्यथा नहीं। इस हृदय में अष्ट दल कमल है जिसका शास्त्र में अनेक स्थान में प्रमाण है। बारह दल के कमल के हृदय चक्र का जो हठ योग के ग्रन्थ में वर्णन है वह इस हृदय से पृथक है। यहां तो केवल प्रेम, भक्तिके बल से और निष्काम सेवा द्वारा ही श्री उपास्यदेव की कृपा प्राप्त

करने पर केवल उच्च उपासक ही पहुंच सकता है। अतएव जो भ्रूमध्य को हृदय से श्रेष्ठ समझकर भ्रूमध्य ही में धारणा ध्यान करते हैं और हृदय का निरादर करते हैं वह अवश्य भूल करते हैं।

भ्रूमध्य में धारणा करने से वहां प्रकाश का देखना और उस प्रकाश में अनेक मूर्तियों का देखना आदि अनेक आन्तरिक अनुभव शीघ्रप्राप्त हो सकते हैं किन्तु उक्त प्रकाश भुव-लोक का है, जो लोक इस भूलोक की अपेक्षा माया से अधिक आच्छन्न है और तमोगुणी, रजोगुणी देव, देवियों से परि पूर्ण है। अतएव उक्त लोक और उसके निवासियों से सम्बन्ध होने पर साधन की पारमार्थिक हानि होना पूरा सम्भव है, और उसके द्वारा यथार्थ पारमार्थिक लाभ नहीं हो सकता। साधक को प्रारम्भ में भ्रूमध्य में धारणा करना प्रायः बड़ा हानिकर होसकता है। यह निश्चित है कि श्री भगवान् की प्राप्ति का मार्ग हृदय में धारणा ध्यान द्वारा है, अन्य नहीं। जब कभी श्री उपास्यदेव के यथार्थ दर्शन-स्पर्श होंगे वे हृदय ही में होंगे और ऐसे ही होते हैं और यही यथार्थ है। अन्यत्र ध्यान करना हानि कारक है और बिना हृदय का आश्रय लिए उसको उपास्य देवका आन्तरिक यथार्थ अनुभव न होगा। यह हृदयस्थान अनुमानिक नहीं यथार्थ है किन्तु इसका यथार्थ स्थान स्थूल शरीर में नहीं है सूक्ष्म शरीर में है और स्थूल शरीर में केवल इसका प्रति रूप गोलक है। स्थूल शरीर में जो धुक धुकी का स्थान और जहां सदा सर्वदा स्पंदन होता रहता है वह यथार्थ हृदय नहीं है और न वह स्थान इस शरीर में हृदय की समानता में है। उस धुक धुकी के स्थान पर कदापी धारणा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वहां ध्यान करने से धुकधुकी का वेग बढ़ जाएगा और उस कारण हानि होगी।

उपासक जब साधना के मार्ग में अग्रसर होता है तो उसको अपने उपास्य देव की परा शक्ति की कृपा से उनके प्रकाश की प्राप्ति होती है और तब उसकी हृदय गुहा उक्त प्रकाश की जागृति और प्रादुर्भाव द्वारा प्रकाशित होती है और तब उसको यथार्थ हृदय चक्र देख पड़ता है ऐसी दृष्टि होने के पहले साधक को वक्षः स्थल और उदर के बीच में जो गोलक है उसके भीतर हृदय को मानकर धारणा ध्यान करना चाहिये, किन्तु स्मरण रहे कि चित्त स्थूल शरीर के मांस मय स्थान में नहीं रक्खा जाय किन्तु अन्तर में हृदयाकाश का होना चिन्त करके उसकी धारणा की जाय। उस गोलक के भीतर हृदयाकाश में हृदय गुहा चिंतन कर धारणा की जाय किन्तु स्थूल शरीर के मांसमय हृदयकी भावना उसमें एक दम न रहे।

अष्ट दल कमल साधारण रीति से उलटा अर्थात् नाल ऊपर और दल नीचे करके रहता है किन्तु साधन द्वारा उस उलटे को सीधा करना पड़ता है जिस में कि मूल नीचे और दल ऊपर हो। यदि उपास्य देव को हृदय कमल में स्थित मान कर ध्यान किया जाय तो कमल का

आकार सीधा समझकर करना चाहिये अर्थात् दल उपर और नाल नीचे । हृदय का अर्थ ही है "हृदि अयं हृदयं" अर्थात् उपास्यदेव हृत्स्थान में वास करते हैं अतएव उसकी हृदय संज्ञा हुई:-

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तं हृदयमिति तस्मात् हृदयमहर हर्वा एवं वित्स्वर्गं लोकमेति ॥ छां०उ०

निश्चय से यह परमात्मा हृदय में है उसका यही निरुक्त है हृदय में यह आत्मा है उस हेतु हृदयम् यह नाम है। ऐसा जानने वाला ब्रह्म को प्राप्त करता है ।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन्सर्व भूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ गी०

हे अर्जुन ! श्रीभगवान् अपनी माया करके देहाभिमानी प्राणियों को अपने २ कर्मों में नियुक्त करता हुआ सम्पूर्ण भूतों के हृदय में निवास करता है ।

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्च नैनम् । हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुर मृतास्ते भवन्ति ॥ श्वेता ० उ ० ॥

उस परमात्मा का रूप नेत्र से नहीं देखा जाता है किन्तु शुद्ध मन से उस हृदयस्थ को शुद्ध हृदय में पाकर अमर होजाता है ॥

अगुंष्ठ मात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ॥ कठ० ॥

अंगुष्ठ मात्र अन्तरात्मा पुरुष सदा लोगों के हृदय में संनिवेशित रहता है ।

तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा व्रीहिर्वायवो स एष सर्व-स्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किंच ॥ वृहदारण्य ॥

उस हृदय के बीच में अति सूक्ष्म ब्रह्म व्याप्त है, वह ब्रह्म सब का ईश सर्वाधिपति है और जो कुछ है सब का शासन वही कर रहा है ॥

इस तरह के अनेक प्रमाण शास्त्रों में मिलते हैं उनसे और महात्माओं के अनुभव से यही सिद्ध होता है कि भगवान हृदय में निवास करते हैं। इस लिए भगवान की प्राप्ति के लिये हमको हृदय ही में ध्यान करना उचित है। हृदय के द्रवीभूत होने पर ही भगवान के दर्शन सम्भव हैं। वह हृदय गम्य है अतएव साधक को उचित है कि आरम्भ ही से हृदय में ध्यान लगाना चहिए ॥

तप करो ।

(ले० हीरानन्द ब्रह्मचारी,
भगवद्भक्ति आश्रम)

मेरे प्यारे भाइयो यदि आप मुझ से प्रश्न करें कि संसार की शान्ति के लिए हिन्दू धर्म के उद्धार के लिए और अपनी

आत्मा के कल्याण के लिए लोगों को क्या करना चाहिए तो मेरा विनय पूर्वक यह नम्र निवेदन होगा कि हम सब को तप करना चाहिए, कारण हिन्दु धर्मशास्त्र, वेदों से पुराणों तक इसी सिद्धान्त से भरपूर हैं। यह इतिहास की बात है यह आकस्मिक घटना नहीं है, यह ज्ञान है और सत्य ज्ञान है। यह ऐसा ज्ञान है जो अविच्छिन्न और अकाट्य है। यह ऐतिहासिक सत्य है। यह शक्ति है क्योंकि यह ज्ञान है। यह प्रत्यक्ष बात है इस में सन्देह करने को स्थान ही नहीं है यह भूत और वर्तमान दोनों प्रमाणों से प्रमाणिक है फिर भविष्य तो इन दोनों के हाथ रहता ही है इसलिए इसके फल और सिद्धियें में सन्देह ही नहीं। वेद को पढ़ जाइए उसमें आपको ऋषि मुनियों के तप की महिमा मिलेगी, देवताओं के तप का वर्णन मिलेगा, राक्षसों और असुरों के तप का जिकर पावेगा इतना ही नहीं स्वयं भगवान् के तप की भी महिमा मिलेगी। उच्च अवस्था में, साधारण अवस्था में तप वाँछनीय है और अत्यन्त निकृष्टावस्था में भी जब २ मनुष्य अत्यन्त हीन, दरिद्री, कायर और निराश हो गए हैं, भगवान ने ऋषि मुनियों द्वारा तप करने की आज्ञा दी है। जब यह मनुष्य संसार से दुःखी होकर भगवान की तरफ ध्यान करता है तो भगवान तप का ही संकेत करते हैं। यदि आपने उपनिषद्, महाभारत और अन्य ग्रन्थों का अवलोकन किया होगा तो आप को निश्चय हो गया होगा कि तप द्वारा सब कुछ हो सकता है। मैं आपका ध्यान संसार के वर्तमान विज्ञान विशारदों के जीवन की तरफ आकर्षित करना चाहता हूं। उनके जीवन का ध्यान से अध्ययन कीजिए आपको उनकी उन्नति का एक मात्र रहस्य उनका तप ही मिलेगा। वेद भगवान कहते हैं विचार ही तप है फिर वही कहते हैं कि ज्ञान ही तप है। देखिये आधुनिक यूरोप इसी विचार और ज्ञान तप द्वारा ही संसार का स्वामी बन रहा है। अमेरिका के विज्ञान विशारद मिस्टर एडीसन के जीवन की तरफ ध्यान कीजिए कि वह कितना तपस्वी है। उस ने सांसारिक भोगों को नाम मात्र रख कर अपना जीवन इतना तपस्वी बना लिया है कि जिस को सुन कर उसके प्रति आदर का भाव होता है। कहते हैं कि वह बड़े एकान्त स्थान में निवास करता है जहां चारों तरफ शान्ति छाई रहती है। कहते हैं कि वह इतना एकाग्रचित्त रहता है कि उसने अपने भोजन बनाने वाले को आज्ञा दे रक्खी है कि तुम मुझको भोजन के लिए कभी न बुलाया करो और उस की यह आज्ञा है कि मेरे भवन में किसी प्रकार का शब्द या आहट नहीं होनी चाहिए। भोजन के लिए एक स्थान नियत किया हुआ है। रसोइया नियत समय पर भोजन वहाँ रख जाता है और फिर नियत समय पर वह उन बर्तनों को उठा कर ले जाता है और उनके स्थान में ताजा भोजन रख जाता है। फिर कहते हैं कि वह तपस्वी एडीसन जब किसी नवीन अन्वेषण में लगा हुआ

गूढ़ विचार में प्रविष्ट होता है तो तीन२ दिन भोजन नहीं करता है, यह भी कहते हैं कि उसने एक बार तो सात दिन तक भोजन नहीं किया था। वह सात दिन तक बराबर एकही विचार को विचारता रहा था। अन्त में विचार तप रूप होकर उस में प्रकाश उत्पन्न होगया जिससे उसने उस रहस्य को जिसकी उसको लालसा लगी हुई थी उस तप के प्रकाश में देखा जिस से उस को ज्ञान हो गया, कि अमुक सिद्धान्त अमुक प्रकार है। तप द्वारा वह तपस्वी संसार को क्या २ पदार्थ प्रदान करता है? यह तपका ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने है। इस को समाचार पत्र पढ़ने वाला जगत भले प्रकार जानता है।

मैं तप सम्बन्धी कुछ अवतरण अपने शास्त्रों से उद्धृत करके आप की भेंट करता हूं, और साथ ही निवेदन करता हूं कि यदि उन्नति की अभिलाषा है तो तप का इतिहास पढ़िये और तप का साधन कीजिए! बिना तप किए हमारा उत्थान सम्भव नहीं है फिर अपने अनुभव के आधार पर यह भी बतलाए देता हूं कि तप का अवलम्ब करना आरम्भ ही में कठिन है आगे चलकर यह बड़ा कल्याणकारी व आनन्ददायक है परन्तु योग्य गुरु के मिल जाने पर तप करना बड़ा आसान है, गुरु अपने अनुभव और दया से इस प्रकार तप करा देते हैं जिस तरह माता बिल्कुल अज्ञानी बालक को प्रेमवश सब विघ्न बाधाओं से बचाते हुए पोषण कर देती है और उस की प्रसन्नता व आनन्द में कमी नहीं होने देती।

तप कितने ही प्रकार के हैं परन्तु सब से बड़ा तप विचार तप ही माना है कारण भगवान ने इस सृष्टि की रचना विचार तप द्वारा ही की है। श्रुति कहती है "सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति"।

वह एक था उस ने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊं। "स तपो अतप्यत"। उसने तप किया। "स तपस्तप्त्वा। इदं सर्वमसृजत यदिदंकिञ्च"। उस ने तप करके इस समस्त जगत की रचना की। इसी लिए कहा है "तपो मूलं सर्वं"। तप सब की जड़ है। तप अन्तःकरण की शुद्धि का कारण है अर्थात् तप से आत्मा के सब मैल कट कर आत्मा इस भान्ति शुद्ध पवित्र हो जाता है जैसे अग्नि में तपा हुआ सुवर्ण कुन्दन बन जाता है और आत्मा समस्त दुःखों से निवृत्त हो जाता है। भगवान् मनु कहते हैं—

तपो मूलमिदं सर्वं दैवमानुषिकं सुखम्।
तपो मध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेद दर्शिभिः॥

वेद दृष्टा ऋषि जिन्होंने ज्ञान को प्रत्यक्ष किया था कहते हैं कि देवताओं और मनुष्यों के समस्त सुख का मूल तप है और इस का आदि, मध्य और अन्त भी तप ही है। सुख की उत्पत्ति स्थिति और पूर्णता का एक मात्र कारण तप ही है। महाभारत में महर्षि वेद व्यासजी ने ब्रह्माजी के मुख से तप की

महिमा वर्णन करराई है।

प्रजापतिरिदं सर्वं मनसैवासृजत् प्रभुः ।
तथैव देवानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥

प्रभु प्रजापति ने मन के जोर से यह सब रचा है, इसी तरह ऋषि तप के प्रभाव से देवताओं के स्थान में पहुंचे हैं।

तपसाऽऽनुपूर्व्येण फलमूलाशिनस्तथा ।
त्रैलोक्यं तपसा सिद्धा पश्यन्तीह समाहिताः ॥

इस प्रकार ही तप (संकल्प) के क्रम से फल, मूल आदि खाने वाले सिद्ध और समाधि लगाने वाले तप के बल से तीनों लोकों को देखते हैं।

औषधान्यगदादीनि नाना विद्याश्च सर्वशः ।
तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपो मूलं हि साधनम् ॥

औषधि, वनस्पति और सब प्रकार की विद्यायें तप के प्रभावसे प्रकट होती हैं क्योंकि सब की प्राप्ति का मूल साधन तप है।

यद्दुरापं दुराम्नायं दुराधर्षं दुरन्वयम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

जो दुःख से मिलता है, जो दुःख से सीखा जाता है जो दुःख से वश में रक्खा जाता है और जिसका अन्वय (सिलसिला) कठिन से मिलता है वह सब तप से सिद्ध किया जासकता है क्योंकि तप को कोई नहीं लाँघ सकता ॥

सुरापो ब्रह्महास्तेयी भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥

मद्यपीनेवाला, ब्रह्म ज्ञानीका घातक, चोर, गर्भ पात करनेवाला, गुरुपत्नी के साथ गमन करने वाला, इन सब पापों से तप करने वाला मुक्त होजाता है ॥

मनुष्याः पितरो देवाः पशवो मृग पक्षिणः ।
यानि चान्यानि भूतानि त्रसानि स्थावराणि च ॥
तपः परायणा नित्यं सिद्ध्यन्ते तपसा सदा ॥

मनुष्य, पितर, देवता, पशु, मृग, पक्षी और स्थावर तथा दूसरे जो जङ्गम जीव हैं वे नित्य तप में तत्पर रहने पर तप के बल से सदा सिद्धि पाते हैं। इस प्रकार ही तप के बल से महामाया वाले देवता स्वर्ग में हैं भक्त शिरोमणि महात्मा तुलसिदास जी तप की महिमा इस प्रकार वर्णन करते हैं:–

तप बल ते जग सिरजैं विधाता ।
तप बल विष्णु भये परित्राता ॥
तप बल शम्भु करैं संहारा ।
तप बल शेष धरैं भूभारा ॥
तप अधार सब सृष्टि भुवारा ।
तप ते अगम न कछु संसारा ॥

पार्वतिजी के तपोबल से निवृति के अधिष्ठाता, सम्पूर्ण त्यागी महादेवजी का विवाह बन्धन में पड़ना सब को ज्ञात है। तप के बल से मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करके गुण, कर्म और स्वभाव को परिवर्तन करके नीच से उच्च वर्ण की प्राप्ति कर लेता है जैसे वेद व्यास जी का इतिहास है।

कैवर्ति गर्भ सम्भूतो व्यासो नाम महामुनि।
तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जातिरकारणम् ॥

मल्लाहकी लड़कीसे उत्पन्न हुआ व्यास नाम का महामुनि हुआ, जो तप से ब्राह्मण हुआ और वह जाति का कारण हुआ।

तप के प्रभाव से विश्वामित्र महामुनि ने दूसरी सृष्टि की रचना की थी जिसकी यादगार में नारियल का वृक्ष अब तक वर्तमान है जो विश्वामित्र जी ने मनुष्य का शिर बनाया था, बाद में यही विश्वामित्र क्षत्री प्रकृति में उत्पन्न होते हुए भी तपके प्रभाव से ब्रह्मऋषि बनगए॥

क्षीत्रया गर्भ सम्भूतो विश्वामित्रो महामुनि॥

कपिलवस्तु के राजकुमार ने सात वर्ष घोर तपस्या करके बुद्ध भगवान की उपाधि पाई और एक बार संसार के विशेष भागको हिंसावृत्ति से मुक्त कर दिया था। हमारा समस्त इतिहास तपस्वी महात्माओं और तपस्वी बलशाली पुरुषों के उदाहरणों से भरा पड़ा है। मैं पहले बतला चुका हूं कि इस समय भी जगत में जो विभूति दिखाई देती है वह सब तप का ही फल है। जिन मोटर, रेल, हवाई जहाज आदि में तुम आनन्द लेते फिरते हो यह उन विचारवान तपस्वी लोगों के तप का फल है जिनकी मज्जा विचार तप द्वारा शुष्क होगई है और जिन्होंने अपने मन को सब प्रकार की चंचलता से दूर करके एक ही विषय में लगा दिया है। जिस अन्न को खाकर हमारा अस्तित्व है, विचार कर देखो वह अन्न हमारा भाई किसान कितने कठिन तप से उत्पन्न करता है। जिस दुग्ध की बनाई हुई मिठाइयां हम बहुत स्वाद से भोगते हैं वह दुग्ध किसान लोग कितने तप से प्राप्त करते हैं। जिस जाति में तप जाग्रत रहता है वही जाति उन्नत व सुखी होती है और जिस जाति का तप नष्ट हो जाता है वह जाति भी नष्ट हो जाती है। भगवान कृष्ण ने गीता में तप की जैसी सुन्दर व्याख्या की है वैसी और कहीं देखने में नहीं आती। गीता में वर्णित तप प्रत्येक वर्ण और आश्रम द्वारा साधने योग्य है। वह इतना सुलभ और उत्तम है कि अत्यन्त गिरी हुई अवस्था में पहुंचा हुआ मनुष्य भी इस के द्वारा फिर उन्नत हो सकता है। वह फिर कभी पाठकगण की सेवा में उपस्थित करूंगा।

ब्रह्म भावना

जगत के सब धर्म के लोग इस बात को अवश्य मानते हैं कि पदार्थ मात्र में एक विशेष तत्व भरा हुआ है। इसी तत्व को 'सत्, कहते हैं महा नास्तिक भी इसका खण्डन नहीं कर सकता। इन्द्रियों द्वारा जो कुछ ज्ञान होता है उसके आगे कुछ भी नहीं, ऐसा मानने वाले बड़े २ नास्तिकों को भी इतना तो अवश्य

स्वीकार करना होगा कि, जगत यह पदार्थ है, चाहे वह पदार्थ क्षणिक हो या चिरस्थाई हो। यदि वह है तो उस का अस्तित्व अवश्य है। अस्तित्व, बिना सत्, के नहीं हो सकता, यह अटल नियम है। सत् का भाव 'सत्ता' है, एवं उसीसे पदार्थ मात्रका अस्तित्व है। असत् कभी सत् नहीं होता एवं सत् कभी असत् नहीं होता। इसी का समर्थन भगवान श्री कृष्ण ने किया है कि "नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः" किसी धर्म का तत्त्व चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक हो, उस को सत् का स्वीकार करना ही होगा। चाहे कोई उस 'सत्ता' को आत्मा कहे, शक्ति कहे, संस्कार कहे, शून्य कहे, विज्ञान कहे, नेचर या सोल कुछ भी कहे, सिवाय उसके पदार्थ मात्र का अस्तित्व ही नहीं हो सकता। विज्ञान क्या है पदार्थ मात्र में भरी हुई सत्ता का विकास है। बीज में यह सत्ता प्रच्छन्न है। ज्ञानी अज्ञानी, आस्तिक, नास्तिक, धर्मी, विधर्मी, चाहे जैसा कट्टर से कट्टर अभिमानी पुरुष हो, उसे इस सत्ता को मानना ही होगा। मीमांसा का कर्म वेदान्त का ब्रह्म, गौतम का कुलालसम कर्त्ता, कणाद का पदार्थ, सांख्य की प्रकृति एवं पुरुष योग का जीव, ईश्वर संयोग, इन सब का उसी सत्ता में पर्यवसान है। वैज्ञानिक ज्ञानका विकास क्या है? वह वैज्ञानिक ज्ञान कहाँ से आता है? एवं वह वैज्ञानिक ज्ञान कहां रखा हुआ है? इस के उत्तर में उसी सत्ता का आन्तरभान प्रतीत होगा। आन्तरभान ही आत्म सत्ता का रूप है। और यदि आन्तर-भान है तो अवश्य कोई न कोई 'सत्' है जिस का भाव 'सत्ता' सर्वत्र चैतन्य रूप भरी हुई है।

जब यह आत्मसत्ता सर्व व्यापक, समान एक रूप, अभेद है तो उस से बने हुए जगत में विविध पदार्थ, विविध धर्म्म, विविध भान विविध कल्पना, विविध चेष्टा, विविध विचार विविध आचार, विविध व्यवहार, भेदाभेद, संकल्प विकल्प, उच्च नीच, शत्रु मित्र, सुख दुःख, शीतोष्ण, आदि अनेक भिन्न २ प्रवृत्तियों एवं द्वन्दो की जहाँ तहाँ भर मार क्यों है? यह तो अटल नियम है कि सत् का कभी असत् नहीं होता और असत् का सत् नहीं होता फिर इस सिद्धान्त के विपरीत क्षण क्षण में सत् का असत् एवं असत् का सत होता हुआ क्यों प्रतीत होता है? हमारे जन्म, स्थिति, मरणमें प्रतिकूलानकूल सामान्य अद्भुत घटनायें उत्पन्न होके, हमारा जीवन भिन्न रूप विविध प्रकार क्यों व्यतीत होता है? एवं सर्वत्र कुछ कहीं कुछ कहीं, जीवन कलह में सब की अज्ञान दशा, सामान्य सूक्ष्म कीट से मनुष्य तक किसी में कहीं कुछ समानता नहीं इस का कारण क्या है? यह सब प्रकृति का विरोधाभास केवल चेतन पदार्थों ही में है, ऐसा नहीं। यह सब वृक्ष, लता, पाषाण, मृत्तिका आदि जड़ चेतन पदार्थ में समान पाया जाता है तो यह कैसा आत्मतत्त्व है? ऐसा यह आत्मतत्त्व आत्म सत्ता या सत् क्या

सर्व व्यापक, समान एक रूप अभिन्न हो सकता? इन प्रश्नोंका उत्तर देना अत्यन्त कठिन होकर भी अत्यन्त सुलभ है। हमारे यहां के दार्शनिक तत्त्वज्ञों ने इस का खूब विचार किया है। पदार्थ मात्र में चैतन्य भरा हुआ है इसका उन्होंने पहले ही अनुभव ले रखा है। अब पाश्चिमात्य उस प्रमेय को मान कर उस का अनुभव ले रहे हैं। विज्ञान विशारद जगदीश चन्द्र वसु तो इस तत्त्व को प्रत्यक्ष करने के लिये कई यन्त्रों का आविष्कार कर चुके हैं। उन्होंने वनस्पतियों के सुख दुःखादि मनोविकार एवं चेष्टायें प्रत्यक्ष कर दिखाई हैं। वायु में एक प्रकार का प्रकाश प्रत्यक्ष कर दिखाया है। पदार्थ मात्र में विद्युत्क्रिया एक रूप, समान, अभिन्न चलती है, एवं उस प्रक्रिया का कारण जड़ भौतिक शक्ति नहीं। कोई ऐसी अज्ञात शक्ति सत्ता है, जो नित्य, अनन्त, अनादि है। इसी को शास्त्रकारों ने 'चित्' कहा है। 'सत्' की विकाश रूपा शक्ति चित् है, और वह सब जड़ चेतन में एक रूप भरी हुई है। उसका क्षण क्षण में परिवर्तन होके पदार्थ मात्र का विकाश-विनाश होता है। यह बात सब को अवश्य ही माननी होगी।

किसी पदार्थ का क्रमशः विकास होकर नाश होजाने पर अवशेष क्या रहता है? इसका उत्तर यदि "कुछ नहीं,, ऐसा होगा तो पदार्थ का नाश हो जाने पर, उसी पदार्थ का प्रत्यक्ष रूप फिर क्यों दृष्टि गोचर होता है? पदार्थमय जगत् की उत्पत्ति है तो, स्थिति होकर नाश भी है। उसका नाश होजाने पर "कुछ नहीं,, इस उत्तर में फिर उसका उत्पन्न होना ही असम्भव होगा। वृक्ष का नाश होकर फिर उसका उत्पन्न होना न माना जायगा तो, उसके बीज का फिर उसका वही वृक्ष हम देखते हैं, इसके लिए क्या कहा जायगा? अर्थात सद्रूप पदार्थ का कभी अत्यन्ताभाव नहीं होता उसका रूपान्तर मात्र होना है और उसमें की वह सत्ता चैतन्य रूप बिना किसी विकाश विनाश के व्यापक, समान, एक रूप अभिन्न रहती है। समय पाते ही फिर उसका उदय होता है। इसी प्रकार जगत् का प्रलय होजाने पर, उसकी फिर अभिव्यक्ति होती है। उसका ज्ञान हमें यथावत् नहीं होता। इसलिए हमको सर्वत्र भेददृष्टि भरी हुई प्रतीत होती है। चैतन्य सर्वत्र व्यापक, एक रूप, अभेद है इसका अनुभव हमारे यहां सबने पहले ही ले रक्खा है। अब यूरोप के विद्वान भी इसका अनुभव करने लगे हैं। परिचित ज्ञान क्या है? विचार शक्ति क्या है? विचार वाचन क्या है? यह सब उसी तत्त्वशक्ति का अर्थात् आत्म शक्ति का व्यापकत्व, एक रूपत्व एवं अभिन्नत्व है। उस 'सत्, 'चित्, शक्ति का 'आनन्द, में आत्म तत्त्व में, हम विकाश नहीं कर सकते इसीलिए उपर्युक्त जटिल प्रश्न उत्पन्न होते हैं, हुए हैं और होंगे। कभी इन प्रश्नों का समाधान कारक उत्तर नहीं मिलेगा। हमारे शास्त्रों ने इसका एक मात्र उपाय बताया है।

यावत्सर्वं न संत्यक्तं तावदात्मा न लभ्यते ।
सर्वस्तु परित्यागे शेष आत्मेति कथ्यते ॥

जब तक सब त्याग नहीं किया जाता तब तक आत्मा प्राप्त नहीं होता। सब वस्तुओं का त्याग होने पर शेष जो कुछ रहता है उसे 'आत्मा, कहते हैं।

आत्मा ब्रह्म है एवं ब्रह्म आत्मा है। आत्मा की शक्ति चिद्रूप चैतन्य शक्ति है और वही ब्रह्म की सत्ता स्वयं प्रकाश शक्ति है। वह जगत् के प्रत्येक अणु परमाणु में भरी हुई है और वही चैतन्य शक्ति सर्वत्र प्रवाहित, प्रकाशित एवं व्याप्त है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्त सर्वंतस्य भासा सर्वमिद विभाति ॥

जहां सूर्य चन्द्र-तारा प्रकाशित नहीं होते। ये विद्युच्छक्तियें प्रकाशित नहीं होती, वहां अग्नि की क्या बात है ? वह प्रकाशित होता है-तब सब प्रकाशित होते हैं।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञान गम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

वह तेज का भी तेज है एवं उसे अन्धकार से अलग कहते हैं। वह ज्ञान-आत्म ज्योति, ज्ञेय, जानने योग्य, एवं ज्ञान गम्य परा विद्या से जानी जाती है और वही सबके हृदय में विराजमान है। उसी आत्मा को खोजना चाहिए, जानना चाहिए और उस ही को प्राप्त करना चाहिए।

तमेवैकं जनाथ आत्मानम् ।
अन्योवाचो विमुञ्चथ, अमृतस्यैष सेतुः ॥

उसी एक आत्मा को जानो, दूसरी बातों को छोड़ो। वह अमृत का सेतु है। इस में क्या सन्देह है ? उस आत्म ज्ञान के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है।

तद्विद्धि प्रणि पातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः ॥

उस ज्ञान को तू साष्टांग प्रणाम से, बार २ प्रश्न करने से तथा सेवा करने से समझ कि तत्त्वदर्शी ज्ञानी तुझे इसका उपदेश करेंगे ॥ इसलिए ज्ञान की प्राप्ति के लिए और ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए तत्त्ववेत्ता आचार्यों की सेवा में जाकर अपना सर्वस्व उनके अर्पण करके उनकी सेवा व आज्ञा में अपने शरीर और मनकी भावना का त्याग करदेना चाहिए। ऐसा करने से वह दया के सागर वह आनन्द प्रदान करेंगे कि जिसको पाकर जीवात्मा समस्त क्लेशों से छूटकर आनन्द रूप होजाता है ॥

प्रिय पाठकगण! भक्ति के प्रचार के लिए भक्ति के ग्राहकों की संख्या बढ़ा कर संसार में सुख व शान्ति फैलाने का पुण्य कमाइए।

साधु ।

जब देश में हिन्दू-धर्म शास्त्र का प्रचार था, लोग अन्तःकरण की शुद्धि और भगवान की प्राप्तिके लिए सात्विक त्याग करके और कर्तव्य परायण होकर साधन किया करते तब साधु शब्द सार्थक था । ऐसे त्यागी तपस्वी और कर्तव्य शील महात्मा-जन अपने को भगवान और जनता का सेवक समझ कर काम करते थे और यह सारे देश में फैले हुये थे । इनका काम धर्म्म की केवल मौखिक व्याख्या करना न था वरन् स्वयं धर्म को धारण कर, धर्माचरण में प्रवृत्त होना था । यह मोक्ष धर्म का साधन करते थे । इनका मोक्ष धर्म अपने को ब्रह्म मान कर गृहस्थियों की गाढ़े पसीने की कमाई को इन्द्रिय भोग और शरीर पालन में खर्च कर अहंकारी बनने मात्र पर निर्भर न था बल्कि इन का धर्म-शास्त्र विहित धर्म था । यह सब को अपनी आत्मा जान कर अपनी आसक्ति और अहंकार की निवृत्ति के लिये सब जीवों को सुख पहुंचाने के लिये कर्म करते थे जैसे कुआ बनवाना, तालाब बनवाना, वृक्ष लगवाना और लोगों को निवृति की शिक्षा देना । परन्तु अब वह बात कहां, अब तो उलटी गङ्गा बह रही है कारण एक मात्र यही है कि संस्कारी जीव उत्पन्न नहीं होते । आज एक परोपकारी साधुजन की कहानी याद आगई है वही पाठक गण की भेट किये देते हैं ।

दिल्ली प्रान्तके एक ग्राममें कुछ सत्संग था वहां साधु महात्मा आकर निवास किया करते थे । उस ग्राम में एक जाट का लड़का साधुओं का सत्संग किया करता था सत्संग में वह महात्माओं के मुख से कुएं बनाने और तालाब खोदने का उपदेश सुना करता था । जब उपदेश का अंकुर निकला तो उसने निश्चय किया कि किसी प्रकार एक कुआं बनाना चाहिये परन्तु वह अत्यन्त दरिद्री था, उस के पास सिवाय शरीर के कुछ न था । परन्तु निश्चय दृढ़ था इस लिए उसने अकेलेही कुआ खोदने का विचार कर लिया और थोड़े ही दिन में बिना किसी सहायता के एक कुंई तय्यार कर ली । कहते हैं कि वह कुंए में रस्सी बांध कर नीचे उतर जाता और वहां टोकरे में मिट्टी भर कर फिर रस्सी के सहारे ऊपर आता और मिट्टी खेंच कर बाहर डालता । वह प्रत्येक बार ऐसा ही करता । पाठकगण कितना कठिन और घोर पुरुषार्थ था । जब कुंई तय्यार हुई तो उसने उसको पक्की बनाने का निश्चय किया परन्तु यह रुपया का मामला था । उस साधारण जाट के लड़के को दान भी कौन देता ? वह संस्कारी जीव था और इस पुण्य से उस का अन्तःकरण भी कुछ स्वच्छ हो चुका था इस लिये उस में त्याग का भाव आगया और वह कुटम्ब का मोह छोड़ कर त्यागी हो गया परन्तु उसका त्याग परोपकार के निमित्त था । वह घर को छोड़ कर अपनी कुंई को पक्की बनाने की लग्न में ग्राम २ और शहर २ में घूमने लगा परन्तु उस को चन्दा मांगना नहीं आता

था इस से धन एकत्र न कर सका। अन्त को घूमते २ वह अहमदाबाद (गुजरात) पहुंच गया। वहां जाकर वह एक मन्दिर में रहा। दो चार दिन रहने पर उस के उत्तम स्वभाव के कारण लोगों का उस से प्रेम हो गया और उन्होंने प्रेरणा की कि तुम इस मन्दिर के पुजारी बन जाओ। वह भगवान का भक्त तो था ही साथ ही, उसको कुई के बनने की बात भी यहां दृष्टि गोचर हुई क्योंकि मन्दिरमें चढ़ावा आता था, इस से उसने बड़ी प्रसन्नता से मन्दिरकी सेवा स्वीकार कर ली! वह नित्य प्रति भिक्षा मांग कर गुजारा करता था और मन्दिर का जो चढ़ावा आता था वह सब जमा करता जाता था। इस प्रकार करते २ उसको १२ वर्ष हो गये। कहते हैं जब उस के पास कुई बनाने के लिये काफी रुपया हो गया तो वह उस रुपये को लेकर वहां से चल दिया। अपने ग्राम को जाने के लिए वह गुड़गावां स्टेशन पर उतरा। वहां पुलिस के सिपाही ने किसी भान्ति उस पर सन्देह कर लिया। जब उसकी तलाशी ली गई तो उस के पास रुपए निकले। कहते हैं कि उस ने उन रुपयों को पृथक २ कपड़ों में उसी भान्ति बान्ध रक्खा था कि जिस भान्ति उसको पृथक २ समय में मिले थे। पुलिस ने उस के बयान लेकर हवालात में बन्द कर दिया। फिर अहमदाबाद से जांच करने पर उसका सब वृत्तान्त ठीक पाने पर उसे मुक्त कर दिया। वह साधु अपने ग्राममें आया और वहां आकर उसने अपनी कुई बनाई॥

भगवान् का युधिष्ठिर को उपदेश।

भगवान् कहते हैं— हे सुन्दर आचरण वाले! हे कुन्ती के पुत्र! धर्म्म के लिए तेरा ऐसा उद्योग है, इस लिए तुझे जगमें कोई पदार्थ भी दुर्लभ नहीं है॥ हे राजेन्द्र। धर्म्मको सुनने से, कोई यज्ञ करता हो उस समय उसका दर्शन करने से दूसरों को धर्म्म का उपदेश देने से, धर्म्माचरण करने से, कोई धर्माचरण करता हो उसकी प्रशंसा करने से, धर्म्म मनुष्य को स्वर्ग में लेजाता है। धर्म पिता है, धर्म माता है, धर्म नाथ है, धर्म भ्राता है, धर्म सखा है और हे परन्तप! धर्म ही स्वामी है। धर्म से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, धर्म से भोग और सुख मिलते हैं, धर्म से उत्तम ऐश्वर्य मिलता, है, धर्म से उत्तम स्वर्ग गति मिलती है। सेवा किया हुआ यह शुद्ध धर्म्म महाभय से रक्षा करता है, धर्म से द्विजभाव और देव भाव की प्राप्ति होती है, धर्म मनुष्य को पवित्र करता है। पुरुष का पाप जब समय पाकर क्षीण होजाता है, तब हे युधिष्ठिर! मनुष्य की बुद्धि धर्माचरण में लगती है। हजारों जन्मों में भी

मनुष्यपना दुर्लभ है, फिर इस मनुष्य जन्म को पाकर भी जो धर्म नहीं करता है वह आप ही अपने आपको धोखा देता है। लोगों में निन्दापाने वाले, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूसरों के द्वेषपात्र और मूर्ख इन छः पुरुषों ने पहले धर्म्माचरण नहीं किया है ऐसा समझ परन्तु जो बड़ी आयु वाले, शूर, पण्डित, भोग भोगने वाले, नीरोग और स्वरूपवान् हैं इन छः प्रकार के पुरुषों को पहिले जन्मों के धर्माचरण करने वाले जानो। इस प्रकार जो शुद्ध धर्म का आचारण करता है वह उत्तम गति को पाता है और जो अधर्म का आचरण करता है वह पक्षी की योनि में जन्म लेता है। हे पाण्डव! हे कुन्तीनन्दन तू वैष्णव धर्म के सब से उत्तम रहस्य को सुन, अब तुझ श्रेष्ठ भक्त से मैं परम धर्म कहूंगा। तू मुझे बड़ा प्यारा है और सदा मेरी शरण में रहा है, इस लिये धर्म संहिता तो क्या, परन्तु परमार्थ विषय भी कहूंगा। धर्म की स्थापना करने के लिए तथा दुष्टों का नाश करने के लिये मैंने यह माया से मनुष्य का अवतार धारण किया है। जो मनुष्य का अवतार धारण करने वाले मेरा अपमान करते हैं वे मूढ पुरुष इस संसार में पशु पक्षियों की अनेकों योनियों में जन्म लेते हैं। परन्तु जो ज्ञान रूप नेत्र से मुझे सब प्राणियों में विद्यमान देखता है वह मेरा भक्त सदा मुझ में लगा रहने वाला है और ऐसों को मैं अपने पास बुलालेता हूं। मेरे भक्त का नाश नहीं होता है, मेरे भक्त पाप रहित होते हैं, हे पाण्डव मेरे भक्तों का मनुष्यों में जन्म सफल है। हे पाण्डव नन्दन मेरे भक्तों से (अनिच्छासे) पाप कर्म बन जाता है तो जैसे कमल का पत्ता पानी से लिप्त नहीं होता है तैसे ही मेरे भक्त सकल पापों से लिप्त नहीं होते हैं। हे तात! मनुष्य हजारों जन्म तक तप करके आत्मा को तृप्त करते हैं उस समय उनके हृदय में भक्ति उत्पन्न होती है, इस में संदेह नहीं है। परम गोपनीय, कूटस्थ, अचल और ध्रुव मेरे स्वरूप को भक्त जिस प्रकार देख पाते हैं उस प्रकार देवता भी नहीं देख सकते। मेरे अवतारों में मेरे जिस रूपका दर्शन होता है उस रूप की हे पाण्डव! सब प्राणी सकल प्रकार के पदार्थों से पूजा करते हैं। करोड़ों और हजारों कल्प बीत गये हैं और आने वाले हैं उन में देवता मेरे जिस रूप का दर्शन करते हैं उस रूप का मैं इस जगत् में सब को दर्शन देता हूं। जो मनुष्य जगत् की उत्पत्ति और संहार करने वाले मुझे यथार्थ रीति से जानकर मेरी शरण में आता है उसके ऊपर मैं अनुग्रह करता हूं और संसार से मुक्त करदेता हूं। मैं देवताओं का आदि हूं, मैंने ब्रह्मादिको उत्पन्न किया है, मैं अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर इस सब जगत् को रचता हूं। मैं तमोगुण का मूल हूं, अव्यक्त हूं रजो गुण में भी मैं बस रहा हूं ऊपरके भाग में सत्व गुण में रहता हू, मैं लोभ से दूर हूं और ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त सब में व्याप रहा हूं। स्वर्ग को मेरा शिर जानो, चन्द्रमा और सूर्य मेरे नेत्र हैं,

गौ, अग्नि और ब्राह्मण मेरा मुख हैं तथा वायु मेरा श्वास है। आठों दिशायें मेरी भुजा हैं तारा गण मेरा गहना हैं और सब प्राणियों के अवकाश देने वाले आकाश को मेरी छाती जानो, तथा मेघों का और पवनों का मार्ग मेरा अविनाशी पेट है। हे युधिष्ठिर! सबको धारण करने वाला द्वीप, समुद्र और पर्वतों से भरा हुआ यह भूमण्डल मेरे दो चरण हैं। मैं आकाश में एक गुण और पवन में द्विगुण हूं, अग्नि में त्रिगुण हूं और जल में चतुर्गुण हूं। पञ्चम महा भूतों में जो शब्दादि पांच गुण हैं उन सब तन्मात्राओं में मैं रहता हूं मैं पृथिवी में पांच स्वरूप से रहता हूं। मेरे सहस्र मस्तक हैं, सहस्र मुख और नेत्र हैं मैं हजार बाहु और पेटवाला हूं, हजार जंघा और हजार चरणों वाला हूं। सब पृथिवी को चारों ओर से धारण करके नाभि से ऊपर दश अंगुल स्थान (हृदय) में रहता हूं सब प्राणियों का आत्मा रूप हूं इसलिए मैं सब प्राणियोंमें व्याप रहा हूं। मैं चिन्तवन में नहीं आसकता, क्योंकि अनन्त हूं, मैं अजर, अजन्मा, अनादि, अवध्य अप्रमेय, और अव्यय हूं। हे राजन् मैं निर्गुण निगूढरूप निर्द्वन्द, ममता से रहित, विभागों से रहित, निर्विकार और मोक्ष का आदि कारण हूं। हे राजन्। मैं सुधा स्वधा और स्वाहा हूं, मैं तेज से तथा तप से चारों प्रकार के प्राणियों को स्नेह की पाश रूप गुणों (डोरी) से बांधकर अपनी माया से धारण कर रहा हूं मैं चारों आश्रम वाले धर्म की रक्षा करता हूं चार होताओं वाले यज्ञ के फल को भोगता हूं (संकर्षण, वासुदेव, अनिरुद्ध, और प्रद्युम्न) इन चार मूर्तियों में रहता हूं, मैं चार यज्ञ स्वरूप हूं और आश्रमों पर मेरा प्रेम है। हे युधिष्ठिर! मैं जगत का संहार करके और उसको अपने उदर में धारण करके दिव्य योग बल से प्रलय के समय शयन करता हूं। एक हजार युगवाली ब्रह्मा की रात्रि भर महा सागर में रहकर स्थावर और जङ्गम प्राणियों को रचता हूं। कल्प २ में प्राणियों का संहार और फिर सृष्टि करता हूं, परन्तु वे मेरी माया से मोहित होने के कारण मुझे जानते नहीं। अन्धकार रूप तथा नित्य खोजने योग्य मेरी गति शान्त दीपक की गति की समान जानी नहीं जाती। हे राजन्। कहीं कोई ऐसा पदार्थ नहीं है, जो मुझ में स्थित न हो। यह स्थूल तथा सूक्ष्म रूप जगत् जहां से मैत्री भाव से आपस में जुड़ा हुआ है तहां तक मैं सब में जीव रूप से रहता हूं। अधिक कहने से क्या लाभ है मैं तुम से सत्य ही कहता हूं कि—जो भूतकाल रूप तथा भविष्यत काल रूप है वह सब मैं स्वयँ ही हूं। हे भरत वंशी राजन्! मैंने सब प्राणियों को उत्पन्न किया है वे मेरा स्वरूप हैं, परन्तु मेरी माया से मोहित होरहे हैं वे मुझे जानते नहीं। हे राजन्! देवता, असुर और मनुष्यों वाला यह जगत् इस प्रकार मुझ से उत्पन्न होता है और मुझ में लय होजाता है।

सदसद्विचार।

ले० पं० ज्ञान चन्द्र शास्त्री।

साहित्य-पुराण-तथा धर्म शास्त्रों के अध्ययन का एक मात्र अभिप्राय मनुष्य के चरित्र को उन्नत बनाना है।। शान्ति का अनुभव कराना इच्छाओं की ज्वाला से परितप्त हुवे जीवों को सुखी बनाना और उन्हें ऐसे उपायों का अवलम्बन करने के लिये उत्साहित करना जिनके द्वारा उनको इस लोक में धन-यश और शान्ति तथा परलोक में सुख मिले, इन ही अभिप्रायों की पूर्ति के लिये प्राचीन ऋषियों ने इन का निर्माण किया है।

आत्मा, परमात्मा, इहलोक, और परलोक सम्बंधी प्रश्नों को हल करने का वास्तविक साधन दर्शन शास्त्रों का पांडित्य नहीं है। इन में उलझ कर मनुष्य जीवन भर अपने सिर को खुजलाता हुवा सम्भव है कि उपर्युक्त गूढ प्रश्नों के रहस्य को तनिक भी न समझ सके। इस मार्ग का सच्चा पथप्रदर्शक तो स्वयं का किया हुवा अनुभव है। तत्ववेत्ता जिस सिद्धान्त को सिद्ध कर रहा है उसके अंध अनुगामी मत बनो। उस महर्षि ने अपने विशाल दिमाग का परिचय देते हुवे बडे २ ग्रंथों का निर्माण किया है उसकी कीर्ति का यशोगान चारों ओर हो रहा है, इसलिये उसके सिद्धान्तों को मान ही लेना होगा, यही तो बुद्धि का दासत्व और गोरख धंधे की उलझन है। अपने विचार द्वारा अनुभव करने पर आध्यात्मिक प्रश्न जितनी जलदी हल हो सकते हैं उतने और प्रकार नहीं हो सकते। अपने बुद्धि बल से यदि एक भी प्रश्न की उलझन को सुलझा लिया जावे तो अवशिष्ट सब समस्यायें धीरे २ स्वयं हल होने लग जाती हैं। जीवन का यह प्रश्न समूह उस ताले के समान है जिसका पहिला परदा खुल जाने पर बाकी सब सहज से स्वयमेव खुलते जाते हैं। और लीजये, अध्यापक द्वारा समझाये हुए पूरे ग्रंथ का पाठ करने पर भी बुद्धि उतनी प्रौढ नहीं होती, जितनी स्वतः निज परिश्रम द्वारा समझे हुये चार पृष्ठों से होती है, जीवन मरण के विकट प्रश्नों के सम्बन्ध में वागाडम्बर की शरण लेना तो मानो। मूर्खता ही है। वास्तविक सिद्धान्तों को समझने के लिये न्याय तथा, अन्य दर्शन शास्त्रों की लंम्बी २ शृंखलाबद्ध तर्कपूर्ण सूत्र श्रेणी की ज़रा भी आवश्यकता नहीं। सूरदास और तुलसी के पद्यों द्वारा इस विषय का जैसा ज्ञान प्राप्त हो सकता है उतना सरलता से गीता के भाष्यों द्वारा कभी नहीं हो सकता। संसार के सभी बड़े २ महात्माओं ने इन प्रश्नों को हल करने के लिये सरल और थोड़े शब्दों का उपयोग करना ही उचित समझा है।

आत्माके भविष्य से सम्बंध रखने वाले यह प्रश्न सदैव हमारी आंखों के सामने उपस्थित रहते हैं। इतना ही नहीं, इन प्रश्नों के समाधान और हल करने के साधन भी हमारे सामने प्रस्तुत हैं। इतना होते हुए भी प्रति शत

पिच्छाणमें मनुष्यों को तो यह प्रश्न सूझ ही नहीं पड़ते। उन्हें यह तो बोध ही नहीं होता की इन विषयों का ज्ञान उपयोगी है अथवा नहीं बाकी के मनुष्य लाखों प्रयत्न करने पर भी उन्हें हल नहीं कर सकते। इसका कारण यही है कि मनुष्यों के हृदय में अहंकार की मात्रा सदैव विद्यमान रहती है। अहंकार को बस अंधकार ही समझ लीजिये। जिस प्रकार घोर अंधेरे में हाथ के पास रक्खी हुई वस्तु भी नहीं दिखाई पड़ती, उसी प्रकार अहंकार के कारण मनुष्य सामने रहते हुए इन प्रश्नों के रहस्य को नहीं जान सकता। अपने मानसिक विकारों और वृत्तियों का गुलाम बन कर इन्हीं को अपना रूप समझता है। जड़ जगत की चलती फिरती उठती बैठती वस्तुयें मनुष्य के हृदय को अपनी ओर ऐसा आकर्षित कर लेती हैं कि चर्म चक्षुओं द्वारा दिखाई देने वाले इस संसार के परे क्या है, इस बात की उसे सुध भी नहीं रहने पाती।

"आत्मा कोई वस्तु है, मैं कोई पदार्थ हूं" इस बात को जानने के लिये अपने चित्त को अपने विचारोंको मोड़ो, और देखो कि तुम्हारी यह विचार, शृंखला, यह भूत और वर्तमान का सम्बन्ध, यदि कोई वस्तु नहीं तो क्या है। वास्तव में विचार और आत्मा यह दोनों इस प्रकार बन्धे हैं कि एक को दूसरे से पृथक करना दोनों को नष्ट करना है। जैसे विचार, जैसी भावनायें, वैसा ही आत्मा, वैसा ही मनुष्य, बस इतना समझ लेना ही पर्याप्त है। इस के विरुद्ध आत्मा को विचारों से कल्पना करना कि वह कोई ऐसी वस्तु है जिस का मानसिक भावनाओं से सम्बन्ध नहीं है, लोक परलोक के दोनों को नष्ट करने का उपाय है। जब आत्मा और भावनाओं का कोई सम्बन्ध ही नहीं, जब कर्तव्यों का हृदय के ऊपर कोई असर ही नहीं तब फिर आचार शास्त्र का प्रयोजन ही क्या है ?

आत्मा को विचारों से पृथक करना अथवा कल्पना करने का जो सिद्धान्त है और कि जितना कि वह हानिकारक है, उतनी ही आत्मा को स्थिर और सदैव एकसा रहने वाला पदार्थ विचारने की कल्पना भी अमङ्गलकारी है। यदि हमारा आत्मा सचमुच स्थिर है, यदि उस में किसी भान्ति विकार नहीं हो सकता तो प्रगति-उत्कर्ष उन्नति के लिए उद्योग करना वृथा है। जिस प्रकार सद्विचार और सत्कार्यों द्वारा आत्मिक शक्तियों की उन्नति होती है वैसे ही कुविचारों और कुकार्यों द्वारा आत्मिक शक्तियों की अवनति भी होती है। विकाश सिद्धान्त का शोध पश्चिम में डार्विन साहब ने पहिले पहल भले ही किया हो, परन्तु हमारे पूर्वाचार्यों ने तो सहस्रों वर्ष पहलेही इसे सिद्धकर दिखाया था। अपने भविश्य को स्थिर करना और वैसा ही उसे बना लेना प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार में है। चरित्र गठन का सिद्धान्त ही यही है कि छोटे से छोटा विचार और तुच्छ

से तुच्छ भी कार्य आकार आत्मा के ऊपर अपना प्रभाव अवश्य डालता है। मनुष्य अपनी जीवितावस्था प्रत्येक क्षण में या तो कुछ विचार करता है अथवा कार्य करता है। वास्तव में विचार और कार्य के सर्वथा बन्द हो जाने का नाम ही मृत्यु है, जब तक मनुष्य को यह न विदित हो कि चरित्र को सुधारने अथवा बिगाड़ने वाले उसके कार्य और भावनायें ही हैं, तब तक वह मनमानी क्रियायें किया करता है, परन्तु मानसिक जीवनके उक्त सिद्धान्त से परिचित हो जाने पर ऐसा कौन बुद्धिमान है जो अपनी मनोवृत्तियों और कार्यों का परिष्कार न करेगा।

यदि विचारों की शुद्धि के कारण मनुष्य की चरित्रोन्नति होने की संभावना होती तो संसार के सभी धर्म केवल विडम्बना मात्र ही होते, क्योंकि प्रत्येक धर्म के सब से उत्तम भाग में मन और हृदय दोनों को शुद्ध करने की चेष्टा की गई है। मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण यह भी तो अशुद्ध भावनाओं के स्थान में शुद्ध विचारों को प्रस्तुत कर देनेके ही भिन्न भिन्न नाम हैं। आज कल हमारे धर्मगुरु इस असली तत्त्व को भूल कर केवल बाह्य क्रियाकांड को ही धर्म के नाम से पुकारने लगे हैं किन्तु हमारे प्राचीन महर्षिगण सहस्रों वर्षों से मन, वचन कर्म की शुद्धि को ही आत्मोन्नति की चौड़ी सड़क बताते आए हैं। तदनुकूल आचरण करने में पहिली आवश्यकता विचारों की शुद्धि की है। विचार बल की महिमा अकथनीय है। जिस प्रकार इतिहास की सभी जबरदस्त क्रांतियों ने विचार बल के द्वारा ही संसार में जन्म पाया है, उसी प्रकार अध्यात्म संसार में विलक्षण फेर फार भी विचार बल के द्वारा ही संपादित होते हैं।

उत्साह, भक्ति और योग यह तीनों आत्मोन्नति के मुख्य साधन हैं। इन के द्वारा हमारे विचारों की संसार में प्रति दिवस उत्तरोत्तर शुद्धि होती चली जाती है। हृदय शुद्धि के साथ ही साथ शान्ति और सुख की मात्रा भी बढ़ती जाती है। विचारों का संस्कार होने से मनुष्य के कार्यों में भी अन्तर पड़ता जाता है। निदान अन्त में मनुष्य उत्कर्ष की चर्म सीमा को प्राप्त हो कर अपने लक्ष्य को फलीभूत कर लेता है।

महात्मा और साधारण मनुष्य की विचार शैली में बड़ा अन्तर है। एक के भाव दूसरे के भावों से बिल्कुल ही उलटे हैं। यदि बाह्य दृष्टि से देखो तो महात्मा बुद्ध और हम में कोई अन्तर नहीं नजर आता। जैसी शरीर की बनावट हमारी है वैसी ही उन की, परन्तु मन के भीतर प्रवेश करते ही सारी भिन्नता एकदम देख पड़ने लगती है। वास्तव में यदि मनुष्य अपने भावोंको तुलसीदास जी के हृदय स्थ भावों के बिल्कुल ही समान बना लेवे तो उस में और तुलसीदास जी में कोई अन्तर न होगा। भगवान श्री कृष्णचन्द्र का उपदेश है-

"यदि तुम मेरे समान बनना चाहते हो तो अपने आप को और मेरे को भूल जाओ"। यही अहंकार की मात्रा को नष्ट कर देने का उपाय है, जिसके द्वारा कुंभीपाक का अधिकारी पाप लिया, आत्मा भी सच्चा महात्मा बन सकता है। यदि संसार में कोई परिवर्तन करने वाली आश्चर्य जनक घटना है तो वह यही है। कोई पूछे कि यदि केवल विचारों की शुद्धि ही आत्मोन्नति का उपाय है तो ज्ञानोपार्जन–दान –शील– तप– संयम इत्यादि क्रियायें फिर निष्फल ही ठहरी हम कहते हैं नहीं पापात्माओं का तप संयमादिकों की ओर झुकाव कभी न होगा विचारों में कुछ श्रेष्ठता का परिवर्तन होने पर ही इन की तरफ ध्यान जासकता है अवश्य इन सब क्रियाओं और साधनों का भी आत्मोन्नति के लिये प्रयोजन है। हमारा तो अभिप्राय यह है कि विचारों का संस्कार किये बिना यह सारी क्रियायें निरर्थक ढोंग मात्र हैं। बाह्य क्रियाकांड को लब्धस्थित आत्मोन्नति का एक मात्र कारण समझ बैठना भारी भूल है। अपने हृदय की ओर सतत और निरन्तर ध्यान रखने से समझ में आवेगा कि चित्त को स्वायत्त करना कितना कठिन कार्य है।

आत्मोन्नति के उपर्युक्त मार्ग को समझ लेने से मनुष्य अपने उन्नति पथ को सरलता से पकड़ लेता है। जिस प्रकार समुद्र के वक्षःस्थल पर चलने वाले जहाज के लिए दिशा प्रदर्शक यन्त्र की आवश्यकता है उसी प्रकार आत्मोन्नति में इच्छुक जिज्ञासुओं को भी सच्चे पथप्रदर्शक उपदेशक के उपदेश की आवश्यकता है। जनसाधारण अन्धकार पूर्ण दुर्गभवन में भूले हुए यात्री की नाईं कभी इधर और कभी उधर भटकते सिर पटकते हुए जीवनावसान पर्यन्त भी अपने आप को नहीं पहिचान सकते, उन्नति के प्रयत्न की तो बात ही पृथक रही। इसी लिए यह बेचारे अपनी वासनाओं के दास बन कर सदैव संतप्त हृदय रह कर चिन्ताओं और इच्छाओं की धंधकती हुई अग्नि में जला करते हैं। उन्हें यह विदित नहीं है कि सच्चा सुख इच्छाओं की पूर्ति में नहीं अपितु इच्छाओं पर विजय करने में है। आध्यात्मिक संसार के नियमों को भङ्ग करने पर वे वैसा ही दुःख पाते हैं जैसा कि प्राकृतिक नियमों को भङ्ग करने पर हम लोग इस जड़ जगत में दुखी होते हैं।

सद्विचार और सच्चरित्र में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि यदि दोनों को हम एक ही नाम से पुकारें तो अनुचित न होगा। स्मरण रहे कि प्रत्येक विचार चाहे वह कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो, अवश्यमेव कार्य में परिणत होता है। मानस शास्त्र का यह नियम इतना व्यापक है कि इस के आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि कार्य नहीं है तो विचार भी नहीं है। संसार में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं है जो कि केवल अपने विचारों के गुमान ही में

मरे मिटते हैं । उन्हें सचेत करने के लिये हम बताये देते हैं कि बिना कार्य विचार पंगु के समान निरुपयोगी हैं। विचारों की एक मात्र कसौटी कार्य ही है । मनुष्य के विचार चाहे कितने ही प्रशंसनीय क्यों न हों, विश्व भर की भलाई करने के चाहे वह कितने ही मंसूबे क्यों न बांधे, पर जब तक वह कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होकर अपने विचारों के अनुकूल-कार्य का अनुष्ठान नहीं करता तब तक संसार के समक्ष उसका सब कुछ ढोंग है ।

सारांश यह है कि योग्य उपायों का अवलम्बन करने पर मनुष्य अपनी आत्मा और उसकी उन्नति के मार्ग को भली भान्ति जान सकता है । इसका सर्वोत्तम उपाय यही है कि शब्दाडम्बर को दूरसे ही नमस्कार किया जावे और अपने स्वतः के अनुभव द्वारा अपनी आत्मा का चिन्तन किया जावे । यदि प्रति दिवस पांच मिनट भी यह प्रयत्न सच्चे मन से किया जावे तो कुछ काल के अनन्तर ही मनुष्य की आत्मा में ऐसा बल जाग उठेगा कि जिसके द्वारा वह इच्छित कार्य को भली प्रकार कर सकेगा ॥

याज्ञवल्क्य का जनक को उपदेश ।

(गताङ्क से आगे)

२

हे राजन् ! एक समुद्र समान निरञ्जन अद्वैत परमात्मा जो सब का द्रष्टा है वही उसका ब्रह्म लोक है। "एषास्य परमागतिरेषास्य परमासम्पदोऽस्य परमोलोकः एषोस्य परमानन्दः एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रा मुपजीवन्ति" । वही उसकी परम गति, वही उसकी सबसे उत्कृष्ट सम्पद विभूति और वही उसका परमानन्द है। क्योंकि उसी परमानन्द के किसी एक अंश को लेकर अन्य सब भूत आनन्द वाले होते हैं उस परमानन्द की निरतिशयता इस प्रकार वर्णित है"सयो मनुष्याणां राध्य समृद्धो भवत्यन्येषामधिपतिःसर्वै मानुष्य कैर्भोगैः सम्पन्नतमः स मनुष्याणां परमानन्दः" । वह जो मनुष्यों में सब प्रकार के भोग साधनों से सम्पन्न तथा अन्यों का अधिपति होना पुरुष का परमानन्द है ।

"अथ ये शतं मनुष्याणां आनन्दः स एकः पितृणां जित लोकानामानन्दः स एको गन्धर्वलोक आनन्दः । अथ ये शतं गन्धर्व लोकानन्दा स एकः कर्म देवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमभिसम्पद्यते । अथ ये शतं कर्म देवानामानन्दाःस एकः आजान देवानामानन्दः यश्च श्रोत्रियो वृजनो कामहतः। अथ ये शतमाजीन देवानामानन्दाः स एकः प्रजापते लोका-

नन्दो यश्च श्रोत्रियो वृजिनो कामहतः अथैष एव परमानन्द एष ब्रह्म लोक सम्राडिति होवाच याज्ञवल्क्यः"।

मनुष्य के सौ आनन्द एकत्रित किये जाय तो पितरों का एक आनन्द होता है। पितरों से सौ गुणा आनन्द गन्धर्वों को है। गन्धर्वों से सौ गुणा आनन्द कर्मी देवों को है। यदि कर्मी देवों के सौ आनन्द एकत्रित किये जांय तो आजान देवों को एक आनन्द होता है। जो पाप रहित निष्काम श्रोत्रिय होता है उसका आनन्द भी आजान देवों के समान है। आजान देवों से सौ गुणा प्रजापति लोक में आनन्द है और वैसा ही पाप रहित निष्काम वेदवेत्ता श्रोत्रिय का आनन्द होता है। यदि प्रजापति के सौ आनन्द एकत्रित किये जांय तो वह एक ब्रह्म लोक का आनन्द है अर्थात् सबसे उत्कृष्ट निरतिशय एक मात्र परमात्मा का ही आनन्द है। हे सम्राट्! यही परमानन्द है, यही ब्रह्म लोक है और यही याज्ञवल्क्य ने जनक को उपदेश किया और पुनः कहा:-

"स वाऽअयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमयः आपोमयो वायुमयः तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयः धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदम्मयो ऽदोमय इति"।

वह यह आत्मा ब्रह्म विज्ञानमय, मनोमय चक्षुर्मय, श्रोत्रमय, पृथिवीमय, आपोमय, वायुमय, आकाशमय, तेजमय, अतेजमय-काममय, अकाममय, क्रोधमय अक्रोधमय, धर्ममय, अधर्ममय अर्थात् सर्वमय है। "यथाकारी तथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवती पापकारी पापी भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवती पापः पापेन" यह जैसे कर्म करता है वैसा ही हो जाता है पुण्य कर्मों से पुण्यात्मा पाप कर्मों से पापात्मा। "अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुषः" यहां से आगे कहते हैं कि यह पुरुष अपने संकल्प अथवा इरादोंका बना हुवा है। "स यथा कामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत् क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते। यो कामो निष्कामः आप्तकामः आत्मकामः न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति"। यह जैसा संकल्प करता है वैसे ही निश्चय वाला होता है जैसा यह निश्चय करके अपने आप को मान लेता है वैसा ही हो जाता है जो अकाम अर्थात् जिसकी कामना पूर्ण हो गई है और निष्काम है केवल एक आत्मा की ही कामना वाला है योगी की भान्ति उसके प्राण उत्क्रमण नहीं होते। वह यहीं ब्रह्म बन कर ब्रह्म को प्राप्त होजाता है।

ऊर्ण नाभिर्यथा तन्तून सृजते संहरत्यपि।
जाग्रत् स्वप्ने तथा जीवोगच्छत्यागच्छते पुनः॥
नेत्रस्थं जाग्रतं विद्यात् कण्ठे स्वप्नं समाविशत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुर्यं मूर्ध्नि संस्थितम्॥

जैसे मकड़ी जाले के तारों को उत्पन्न करती है और उनका संहार करती है इसी प्रकार जीव जाग्रत् और स्वप्नमें जाता है और

चला आता है अर्थात् जीव के जाने से जाग्रत वा स्वप्न जगत् उत्पन्न हो जाता है। और उस के चले आने से लय हो जाता है नेत्र स्थान में जाग्रत् अवस्था जाननी चाहिये और कण्ठ देश में स्वप्न को देखता है। सुषुप्तावस्था में हृदयस्थ होता है। और तूर्यावस्था में मूर्धा में स्थित होता है। यह आत्मदेव जो हमारा अपना आपा है, स्वयं प्रकाश स्वरूप है, जो सब समय हमारे साथ रहता है घोर अन्धेरे में भी हमें नहीं छोड़ता इसको पूजो यही सम्पूर्ण भूतों का राजा है और जैसे रथ की नाभि और नाभि में अरे लगे होते हैं "एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वसर्व एव आत्मनि समर्पिताः" इसी प्रकार सब भूत, सब देवता, सब लोक, सब प्राण, और सब जीव उसके आश्रित हैं। इसका सप्तचक्र रूपी सात मंजिल का यह स्थान है :

आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासान्तवर्णाश्रयं।
स्वाधिष्ठान मपि प्रभाकरसमं बालान्तषट् पत्रकम् ॥
रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डाद्यं फकारान्तकं।
पत्रै द्वादशभिरनाहतपुरं हैमं कठान्ता वृतम् ॥
पत्रै सस्वर षोडशै शशधरं ज्योतिर्विशुद्धाम्बुजं।
सत्यानन्द मयं सदा चिन्मयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम्
तस्मादूर्ध्वतं प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं।
हंसोपचार युग्मकं द्वयदलं रक्ताभ मात्राम्बुजम ।२

मूलाधार में कुण्डलीनी देवी सहित गणेश अधिष्ठात्री देवता, क्लिं जाप, लाल रंग ऋद्धि सिद्धि चंवर डुलाती हैं। अर्थात् गुदा शिश्न के मध्यभाग में तेज समान चतुष्पैंखुरी चार दलों में चतुर अक्षर व. स. जिन के अन्त में होवें वे वसान्त व. ष. स. इनके अन्त में है यहां कामदेव निवास करते हैं। जो प्रथम सर्प के आकार को धारण कर सरको हो जाते हैं। दूसरा लिङ्ग के ऊर्ध्व भागमें स्वाधिष्ठान पीतवर्ण षट्पैंखुरी ...... दृश्य को अपने में लय कर अन्तः पुर रणवास हृदयाकाश में आकर अपनी प्यारी स्त्री प्राज्ञ रूपी आत्मा से गले लगाया हुआ न बाहर देखता है और न भीतर अर्थात् एक हो जाता है। यह निर्मोही पुरुष अकेला हंस स्वयं प्रकाश क्रीड़ा करता है। लोग इसके दृश्य अथवा स्थान को देखते हैं और इस खेल खेलने वाले को कोई नहीं देखता। अब हम अगले लेख में ऋषियों और भक्तों का अन्तिम अनुभव लिखेंगे। जो उसे पढ़ेगा श्रद्धा और भक्ति से सुनेगा अवश्यमेव मुक्ति को पावेगा। और जो संशय उठावेगा वह इस भगवान् के वचनानुसार नष्ट होजायगा। यथा "संशयात्मा विनश्यति" संशयात्मा नष्ट होता है।

(अपूर्ण)

भजन १

ठाकुर तव शरणाई आयो ॥टेक॥
उतर गयो मेरे मन का संशय,
　　जब तेरा दर्शन पायो ॥ १ ॥
अन बोलत मेरी बिरथा जानी,

अपना नाम जपायो ॥ २ ॥
दुःख नाठ्यो सुख सहज समायो,
अनन्द अनन्द गुण गायो ॥३॥
बाँह पकड़ कड़ लीने अपने,
गृह अन्ध कूपते मायो ॥ ४ ॥
कहो नानक गुरु बन्धन काटे,
बिछुड़त आन मिलायो ॥ ५ ॥

भजन २

जाके प्रिय न राम बैदेही ॥ टेक ॥
तजिये ताहे कोटि वैरी सम,
यद्यपि परम सनेही ॥१॥
तजो पिता प्रह्लाद भविक्षण,
बन्धु भरत महतारी ।
बलि गुरु तजो कन्थ ब्रज बनितन,
भये जग मंगल कारी ॥२॥
नाते नेह राम के मनियत,
सुहृद सुसेव्य जहां लौं ।
अंजन कहा आंख जेही फूटें,
बहुतक कहूं कहां लौं ॥३॥
तुलसी सोई सब भांति परम हित,
पूज्य प्राण ते प्यारो ।
जाते होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो ॥४॥

भजन ५

मेरी प्यारी सजनी, तेरा कित गया बोलन हारा ॥टेक
बालु की भींति पवन का खम्भा,
छिन गया चिनने हारा ॥१॥
पांच मिरग पच्चीस मिरगनी,
जिन में तीन शिकारा ॥२॥
इन मिरगां मेरा खेत उजाड़ा,
सोगया खेत रखवारा ॥३॥
ना मन्दिर में दीपक कहिये,
ना कोई बाजे घनटारा ॥४॥

भजन ६

मन तू क्यों पछतावै, रे
शिर पर श्री गोपाल, बेड़ा पार लगावै रे ॥टेक
निज करणीको याद करूं जद जी घबरावै रे
वाकी महिमा सुनसुन मन में धीरज आवैरे
जो कोई अनन्य मन से हरिका ध्यान लगावैरे
वाके घर की योग क्षेम हरि आप निभावैरे ॥
शरणागत की लाज तो सब ही ने आवैरे,
तीन लोक को नाथ लाजशे नहीं गंवावैरे ॥३
जो मेरा अपराध गिनो तो अन्त न आवैरे,
ऐसो नन्दकिशोर चित्त में एक न लावैरे ॥४
पतित उधारन बिरद वाको वेद बतावैरे,
मो गरीब के काज बिरदशो नहीं लजावैरे ॥५॥
महिमा अपरम्पार तो सुर नर मुनि गावैरे,
ऐसो नन्दकिशोर भक्त की ओर निभावैरे ॥
वो है रमा निवास भगत की आश पिटावैरे,
तू मत होय उदास कृष्ण को दास कहावैरे ॥

भजन ३

अगम नहीं गुरु बिन सूझ पड़े ॥ टेक ॥
चार वेद पढ़ि पराण अठारा नो पद खोज मरे १

ज्ञानी बना भरम नहीं छूटा झूंठा ही वाद करे २
कहें गुरु शब्द आकाश वांस पर, श्रुति गगन चढ़े।
तन विराट जो उतरे तुलसी, सहज ही भव उतरे।

भजन ६

सन्त परम हित कारी जगत माहीं॥ टेक॥
प्रभु पद प्रगट करावत प्रीति,
भरम मिटावत भारी॥ १॥
परम कृपाल सकल, जीवन पर,
हरि सम सब दुःख हारी॥ २॥
त्रिगुणा तीत फिरत तन त्यागी,
रीत जगत से न्यारी॥ ३॥
ब्रह्मानन्द सन्तन की सोबत
मिलत हैं प्रगट मुरारी॥ ४॥

भजन ७

मन तोहे किस विधि कर समझाऊं॥ टेक॥
सोना होय तो सुहाग मगाऊं,
बंकनाल रस लाऊं॥
ज्ञान शब्द की फूंक चलाऊं,
पानी कर पिघलाऊं॥ १॥
घोड़ा होय तो लगाम लगाऊं,
ऊपर जीन कसाऊं।
होय सवार तेरे पर बैठूं,
चाबुक देके चलाऊं॥ २॥
हाथी होय तो जंजीर घड़ाऊं,
चारों पैर बन्धाऊं।
होय महावत तेरे पर बैठूं,
अंकुश लेके चलाऊं॥ ३॥
लोहा होय तो ऐरण मंगाऊं,
ऊपर धूवन धुवाऊं॥
धूवन की घन घोर मचाऊं,
जन्तर तार खिचाऊं॥ ४॥
ज्ञानी न हो तो ज्ञान सिखाऊं,
सत्य की राह चलाऊं।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
अमरापुर पहुंचाऊं।

महात्माओं के वाक्य।

जो इच्छाओं के दास हैं वह कामनाओं के प्रवाह के साथ इस तरह नीचे चले जाते हैं जिस तरह मकड़ी अपने बनाए हुए जाले के साथ। बुद्धिमान पुरुष अन्त में इसे काटकर संसार से विरक्त होजाते हैं और मोह को छोड़कर चिन्ता रहित हो जाते हैं॥

जो सामने है उसे छोड़ दो जो पीछे है उसे छोड़ दो और जो मध्य में है उसे भी छोड़ दो॥

बुद्धि मान पुरुष उस बेड़ी को दृढ़ नहीं कहते जो लोहे, लकड़ी और सन की बनी हुई हो। उनसे कठिन पाश तो स्त्री और बाल बच्चों के लिए आभूषण और रत्नों की चिन्ता है॥

मैंने सब जीत लिया है मैं सबकुछ जानता हूं मैं जीवन की प्रत्येक दशा में दुःख से मुक्त हूं मैं सर्व त्यागी हूं और तृष्णा का नाश करके स्वतंत्र हो गया हूं। स्वयं पढ़कर मैं किसे पढ़ाऊं। हमारा अस्तित्त्व हमारे विचारों का फल है, यह हमारे विचारों पर अवलम्बित है, और हमारे विचारों से ही इसकी सृष्टि है। यदि मनुष्य दुष्ट विचार से भाषण करता है, या कर्म करता है तो दुःख उसका पीछा करता है जैसे कि चक्र गाड़ी में जुड़े हुए बैल के पांव का अनुगामी होता है। यदि मनुष्य शुद्ध विचार से भाषण करता है तो सुख उसका इस तरह अनुवर्ती होता है कि जिस तरह उसका छाया सदैव उसका साथ देता है।

जिस तरह वर्षा टूटे हुए छप्पर में घुस जाती है, उसी तरह मलीन हृदय में विषय प्रवेश कर जाते हैं॥

जो हमारे जीवन जगत् का दाता है, वही हमारा पिता रक्षक भी है; वह महान् तेजस्वी एवं महान् शासक है।

अय परम प्यारे! तुम जो अपने भक्तों उपासकों को परम सुख एवं परम शान्ति का दान किया करते हो; यह तुम्हारी अपनी ही सत्यता सच स्वरूपता है और तुम्हारी अपनी ही कृपा का परिणाम है॥

गोशाला।

सर्कार को तोपखाने के लिए बैलों की आवश्कता होती थी इस लिए उत्तम बैल प्राप्त करने के लिए उसने हिसार में एक सर्कारी गोशाला खोली थी। इस गोशाला के कारण ही इस प्रान्त में उत्तम सांड मिल जाता है। अब तोप खानेमें बैलो की आवश्कता नहीं रही है इस लिए यह गोशाला सैनिक विभाग ने छोड़ दिया है और सिविल में शामिल कर दी गई है। इसके प्रबन्धक मि० आर ब्रेमफोर्ड आश्रम की गोशाला देखने आए थे देख कर उनका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और उन्होंने आश्रम से दो गौ अपनी गोशाला के लिए भी लेनी चाहीं परन्तु उनको दी नहीं गईं। गोशालाके बारे में उनकी सम्मति यह है—

मैंने आज अचानक आश्रम की गोशाला देखी। मैंने १८ गाएं देखीं जिनमें ८ निस्सन्देह उत्तम नसल की है और दस छोटे बच्चे हैं। सब गोधन की दशा बहुत उत्तम है और चारा खिलाने और रखने के स्थान का प्रबन्धसन्तोष जनक है। अच्छे डेरी फार्म के यहां अच्छे साधन मौजूद हैं। यहां पर जिस चीज की आवश्यकता है वह उत्तम सांड है इस समय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के से काम लिया जाता है जिसको मैंने नहीं देखा कहते हैं कि वह बीमार है। मुझे बताया गया है कि दूध की तोल लिखनी आरम्भ करदी गई है यदि दूधकी अभिलाषा है तो दूध की नित्यप्रति तोल परमावश्यक काम है। यदि दूध का हिसाब रक्खा गया और उत्तम गायों की बछड़िया सावधानी से पाली गई तो शीघ्र ही उत्तम डैयरी बन जावेगी॥

विधवाओं का प्रश्न—हिन्दु समाज की वर्तमान परिस्थिति में विधवाओं का प्रश्न बड़ा कठिन हो रहा है मुसलमानों की कुचेष्टा और दुर्व्यवहार के कारण तो इसने आन्दोलन का ही रूप धारण कर लिया है। इस सम्बन्ध में हम विस्तार से भक्ति या किसी अन्य पत्र में फिर लिखेंगे आज सूक्ष्म तौर पर पाठक गण का ध्यान इस विषय की तरफ आकर्षित करना चाहते हैं। हमारा प्रयोजन इस समय केवल इतनाही है कि विधवाओं का जीवन सुखमय किस तरह होसकता है और उनके जीवनका सदुपयोग किस भान्ति किया जासकता है? वर्तमान जीवन में विधवाओं के कष्टो की संख्या नहीं है परन्तु इन अगणित कष्टों में से मुख्य कष्ट उनका मानसकि कष्ट ही है। मनुष्य सब प्रकार की गिरावट का कारण उस का अपने सम्बन्ध में तुच्छ विचार है। जो मनुष्य यह सोचता है मेरा जीवन निरर्थक है मैं पापी हूं मैं दुःखी हूं मैं बुरा हूं,, वह समय पाकर मन, बुद्धि और शरीर सब से गिर जाता है। उसकी आत्मा निर्बल होजाती है और उस का जीवन भार रूप हो जाता है। इस ज्ञान की उत्पत्ति मनुष्य स्वयं अपने लिये नहीं करता क्योंकि अपने को मूर्ख और निकम्मा कोई नहीं समझता और न ही यह आत्मा का गुण है उस को यह ज्ञान समाज से मिलता है अपने आस पासके उन साथियों से जिनको वह बुद्धि और आयु में अपने से बड़ा समझता है अपने सम्बन्ध में जो कुछ कहता हुआ सुनता है वैसा ही विश्वास करने लगता है। इसमें एक आपत्ति और है यदि वह उपदेशक उसकेहित चिन्तक भी हों और साथ ही उन को शास्त्रका ज्ञान भी हो फिर तो वह बात पत्थर की लीर बनकर सुनने वाले के हृदय पर अंकित होजाती है। अब आप विचार कीजिए कि वर्तमान परिस्थिति में हिन्दु समाज में विधवाओं को किस प्रकार का उपदेश मिलता है। हमारा अनुभव है कि बड़े २ ज्ञानी पण्डित और धर्मात्मा भी अपनी लड़की या बहन के विधवा हो जाने पर बड़े दुःखित हृदय से यह उपदेश करते हैं " बेटा चिन्ता नहीं करनी चाहिए, यह सब अपने भाग्य की बात है. विधाता जो विपत्ति देवे वही सन्तोष से सहन करलेनी चाहिए. यह अपने ही दुर्भाग्य की बात है यदि अच्छी तकदीर होती तो यह दिन ही क्यों देखना पड़ता इत्यादि" यह तो विचारवानों की बात है फिर अज्ञानियों और मूर्खों का तो कहना ही क्या है? वह तो न मालूम अपने अतुल ज्ञान भण्डार में से उनको नित्य प्रति क्या कुछ प्रदान करते रहते हैं। विचार कीजिए यह सब कुछ क्यों होरहा है? क्या द्वेष और बुरे भाव से? नहीं इसके सम्बन्ध में हमारा अनुभव तो यह है कि इसमें अज्ञान ही प्रधान है। समय के हेर, फेर से हमको शास्त्रों का ज्ञान नहीं रहा है, हम त्याग वैराग और ब्रह्मचर्य को भूल गए हैं; हमारे बीच से अध्यात्म ज्ञान उठ गया है। हमारी बुद्धि पर तमोगुण का परदा छागया है। हम

श्रेष्ठ को निकृष्ट और निकृष्ट को श्रेष्ठ समझते हैं। अब महात्मा कबीर जैसे तत्त्वज्ञानी उपदेशक नहीं हैं जो कहते हैं—

नारी पराई आपनी भोगे नरक में जाय।
घर बाहर की आग ज्यों देवे हाथ जलाय॥

अब हमारे सामने श्री शुकदेव जी भगवान शंकराचार्य और बुद्ध भगवान का आदर्श नहीं है। अब हम श्रुति की उस आज्ञा को भूल गए हैं कि सब से श्रेष्ठ मनुष्य वह है जो आजन्म ब्रह्मचारी रहे इस के पीछे जितना जिस की आयु का अधिक भाग ब्रह्मचर्य में व्यतीत हो उतना ही वह श्रेष्ठ मनुष्य है यह बात स्त्री पुरुष दोनों के सम्बन्ध में एक ही प्रकार की है इस सम्बन्ध में हमारे एक सन्यासी मित्र शराब के घड़े का उदाहरण दिया करते हैं वह कहा करते हैं, कि यदि अपने किसी बुरे संस्कार से शराब का घड़ा मनुष्य के गले पड़ जावे तो उस के फूट जाने पर उस को शोक क्यों करना चाहिए बल्कि प्रसन्न होना चाहिए, और दुर्भाग्य की जगह सौभाग्य समझना चाहिए। व्यभिचार जैसे अत्यन्त निकृष्ट, महानीच और दुष्टकर्म से यदि सौभाग्य से किसी का पीछा छूट जावे तो जीवन को सुखमय, श्रेष्ठ और अपने व दूसरों के लिए सदुपयोगी बनाने का इससे अच्छा और कौनसा अवसर मनुष्य को मिल सकता है? वर्तमान गृहस्थाश्रम की अत्यन्त दुःखित, पतित और निकृष्ट अवस्था को तिलाँजली देकर ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर, त्याग-वैराग, तप और सदाचार युक्त जीवन व्यतीत करते हुए हिन्दू जातिकी सेवा करनेकी कितनी आवश्यकता है और उस के लिए कितने सेवक और सेविकाओं की जरूरत है? यदि हम लोग इस अवस्था पर विचार करके उस के लिये कुछ करना चाहते तो हमारी समझ में सहज ही यह बात आजाती कि हमारी विधवा बहनें ही वर्तमान अवस्था में हमारी जाति और हमारे कुल में सब से श्रेष्ठ, सब से अधिक उपयोगी, धर्मात्मा और पूजनीय हैं। फिर हम सहज ही में यह समझ जाते कि जाति का सुधार स्त्री सुधार पर अवलम्बित है और स्त्रियों का सुधार हमारी लाखों पवित्र बहनों द्वारा शीघ्र ही हो सकता है। मनुष्य का कर्म उस के ज्ञान और विचार पर निर्भर होता है इस लिये विधवाओं के सम्बन्ध में सबसे पहले हम को अपने विचारों में परिवर्तन करना चाहिये इसी विचार से हमारे, उनके और हमारी समाज के दुःख की निवृत्ति का आरम्भ आसानी से हो सकता है। जिस घर में लड़की विधवा हो जावे उसके माता, पिता और कुटम्बियों को शोक नहीं करना चाहिए बल्कि बीती हुई बात पर न पछता कर और मन में सन्तोष करके सोचना चाहिए कि हमारी लड़की को अपनी जातिकी संकटमय और मरनापन्न अवस्थामें सेवा करने का शुभअवसर मिला है। उस बहन को भी बार २ यही उपदेश देना चाहिए कि तेरा जीवन हम लोगों से बहुत पवित्र व श्रेष्ठ है, तू बहुत सौभाग्यवती है, गृहस्थ के अगणित संकटों

से भगवान ने तेरा पीछा छुड़ा दिया है, तू श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करके भगवान की भक्ति और परोपकार में अपना जीवन लगा कर अमर पद (मोक्ष) को प्राप्त कर । तेरे इस पवित्र जीवन से केवल तेरा ही कल्याण न होगा बल्कि हमारी मरती हुई जाति का पुनर्जीवन व उद्धार हो जावेगा फिर इसी प्रकार इसके साथ व्यवहार भी करना चाहिए ।

नोट- इस से पाठकगण यह न समझ लेवें, कि हम विधवाओं की संख्या बढ़ाने में प्रसन्न हैं ।

विषय सूची ।

सं०	विषय	पृष्ठ
१	मङ्गलाचरण	१
२	कृष्ण के चरित्र	३
३	बचा को	६
	दपात्र —	७
४	मत करो	६
	(ले० हीरानन्द ब्रह्मचारी भगवद्भक्ति आश्रम)	
५	ब्रह्म भावना	१३
६	साधु	१७
७	सद्धर्मविचार	२१
	(ले० पं० ज्ञानचन्द्र शास्त्री)	
८	याज्ञवल्क्य का जनक को उपदेश ।	२४
९	भजन	२७
१०	महात्माओं के वाक्य ।	२६
११	विधवाओं का प्रश्न ।	३१

भक्ति के नियम ।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गौ रक्षा और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना । वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना । सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना । राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना ।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा ।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे ।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे ।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा ।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए ।

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ।।)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य ~)।।।

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य ।~)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य ~)।

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय हैं फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कण्ठकर्ताओं के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४८६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ।~) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संग्रह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संग्रह है। वेदान्त विषय की उच्च कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य ।~)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति मन्दिर" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।